राजेन्द्र मोहन शास्त्री
मृदुला शर्मा
रूस की
लोककथाएँ

राजकुमार एण्ड सन्ज़
30/35, गली नं-9, विश्वास नगर
शाहदरा, दिल्ली-110032
के द्वारा प्रथम बार प्रकाशित
संस्करण : प्रथम 2006

आवरण : उदयशंकर
चित्रांकन : श्याम जगोता
ललित ऑफसेट, दिल्ली-110032
में मुद्रित
ISBN: 81-88026-09-3

मूल्य : एक सौ पचास रुपए

RUS KI LOKKATHIAYAN
by R. Mohun, M. Sharma
Rs. 150.00

अनुक्रमणिका

बहादुर नौजवान

बहुत साल पहले की बात है कि मूरोम नामक शहर के पास, कराचारोवो नामक गाँव में इवान तिमोफेयेविच नाम का एक किसान अपनी पत्नी येफ्रोसीन्या याकोव्लेवना और अपने इकलौते बेटे इल्या इवानोविच के साथ रहता था।

एक रोज इल्या सफर की पूरी तैयारी करने के बाद अपने माँ-बाप के पास गया और बोला—''माँ-पिताजी! मुझे इजाजत दीजिए, मैं देश की राजधानी कीयेव जाकर राजा व्लादीमीर की सेना में भर्ती होने जा रहा हूँ। मैं अपनी मातृभूमि रूस की बड़ी ईमानदारी और वफादारी के साथ सेवा

करूँगा और अपने देश के दुश्मनों से रूसी धरती की रक्षा करूँगा।''

उसकी बात सुन उसके बाप, बूढ़े इवान ने कहा—''अच्छे कामों के लिए मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ मगर ध्यान रहे, धन या लाभ के लालच से नहीं, बल्कि देश में नाम कमाने के लिए और वीर योद्धा कहलाने के लिए अपनी मातृभूमि रूस की रक्षा करना। मनुष्य का रक्त कभी व्यर्थ न बहाना और न ही कभी माताओं को आँसू बहाने के लिए मजबूर करना। यह कभी न भूलना कि तुम धरती के बेटे, एक किसान के पुत्र हो।''

इल्या ने जमीन पर माथा टेककर अपने माँ-बाप को प्रणाम किया और फिर अपने कत्थई-झबरे घोड़े पर सवार हो सफर पर निकल पड़ा। उसने अपने घोड़े की जीन को बड़ी मजबूती से कसा था। पहले उसने घोड़े की कमर पर एक जीन-पोश डाला था। फिर उसके ऊपर नमदे (रस्सी) की पट्टी रखी और नमदे के ऊपर चेर्कासी जीन कसी जिसके बारह सिरे तंग रेशम के थे और तेरहवाँ लोहे का था। यह सब दिखावे के लिए नहीं, बल्कि मजबूती के लिए ही था।

कुछ दूर जाकर इल्या के मन में विचार आया कि क्यों न पहले जरा अपने बल की परीक्षा ले ली जाए। इस विचार के मन में आते ही वह अपना घोड़ा दौड़ाता हुआ ओका नदी के पास जा पहुँचा। नदी के किनारे पर एक ऊँची पहाड़ी चट्टान खड़ी थी। इल्या ने अपना कन्धा लगाकर जो धक्का दिया तो पहाड़ी चट्टान नदी में जा गिरी। इससे ओका नदी का रास्ता रुक गया और नदी को मजबूर होकर अपने लिए दूसरा रास्ता बनाना पड़ा।

तब इल्या ने रई की काली रोटी का एक टुकड़ा ओका नदी की धार में डालकर उसका शुक्रिया अदा किया और बोला—''नदी-माता! तूने मूरोमवासी इल्या को सदा अन्न-जल दिया है, उसके लिए तुझे बहुत-बहुत धन्यवाद!''

वहाँ से चलने के पहले इल्या ने अपनी मातृभूमि की थोड़ी-सी मिट्टी उठाकर अपनी जेब में रख ली और फिर घोड़े पर सवार होकर उसे चाबुक लगा दिया।

इल्या का चाबुक खाकर कत्थई-झबरा घोड़ा अपनी पिछली टाँगों पर खड़ा हो गया और फिर एक ही छलाँग में एक झील पार कर गया। जब घोड़े के खुर जमीन पर लगे तो वहाँ से पानी का एक चश्मा फूट पड़ा। इल्या ने बलूत का एक बड़ा पेड़ काटकर गिरा दिया और उसके तने से चश्मे के

ऊपर एक चौखटा बनाकर उस पर लिख दिया—'इवान नामक किसान का बेटा, रूसी बहादुर इल्या यहाँ से गुजरा था।'

पानी का वह चश्मा आज भी बलूत के कुंदों के चौखटे के बीच से बह रहा है।

इल्या वहाँ से कीयेव शहर की ओर चल पड़ा।

उसने वह सीधी सड़क चुनी जो चेर्नीगोव नामक शहर के पास से गुजरती थी। जब वह चेर्नीगोव शहर के पास पहुँचा तो शहर की चारदीवारी के इर्द-गिर्द शोर मचा हुआ था।

बात यह थी कि हजारों तातारियों ने शहर को घेर रखा था। उनके घोड़ों की टापों से जो धूल उठ रही थी और उनके नथुनों से जो भाप निकल रही थी, उसने धरती को मानो एक स्याह पर्दे से ढक दिया था। आसमान में चमकता हुआ सूरज तक आँखों से ओझल-सा हो गया था। तातारी फौज की पंक्तियाँ इतनी घनी थीं कि एक खरगोश भी उनके बीच से नहीं निकल सकता था। शहर के अन्दर से रोने और कराहने की आवाजें आ रही थीं। खतरे के घण्टे बज रहे थे। शहर के सभी लोग पत्थर के बने एक बड़े गिरिजाघर में इकट्ठे हो गए थे और वहाँ छाती पीट-पीटकर रो रहे थे। उनके रोने का कारण यह था कि चेर्नीगोव को जिन तीन तातारी सरदारों ने घेर रखा था, उनमें से हरेक के पास चालीस-चालीस हजार फौज थी।

यह सब जानकर इल्या के बदन में मानो आग-सी लग गई। लगाम खींचकर उसने कत्थई-झबरे घोड़े को रोका और बलूत के एक हरे पेड़ को जड़ समेत जमीन से उखाड़ लिया और तातारियों पर टूट पड़ा। वह दुश्मनों को बलूत के पेड़ से मार-मारकर नीचे गिराने और उन्हें अपने घोड़े के पैरों के नीचे कुचलने लगा। वह हाथ में थमा पेड़ जिधर घुमाता, उधर ही रास्ता साफ हो जाता था। इस तरह तातारियों को मारता-गिराता हुआ इल्या आखिर उन तीन तातारी सरदारों के पास पहुँच गया।

उसने तीनों को लाल जुल्फों से पकड़कर कहा—''ओ, तातारी सरदारों! बोलो, मैं तुम्हें कैदी बनाऊँ या तुम्हारे सिर काट डालूँ? कैदियों के साथ माथा खपाने की मुझे फुर्सत नहीं है। मैं अपने घर से सफर पर निकला हूँ। मेरे थैले में इतनी रोटी भी नहीं है कि तुम जैसे मुफ्तखोरों को खिला पाऊँ। लेकिन रूसी बहादुर मूरोमवासी इल्या तातारियों के सिर काटकर अपने हाथ गन्दे

भी नहीं करना चाहता। इसलिए जाओ, अपनी बची-खुची फौज लेकर यहाँ से चले जाओ और मेरे देश के सारे दुश्मनों को यह खबर कर दो कि मेरी मातृभूमि रूस अभी वीरों से खाली नहीं हुई है। यह बहादुरों की भूमि है, दुश्मन यह बात अच्छी तरह समझ लें।''

इल्या ने उन सरदारों की जान बख्श दी। तीनों सरदार अपनी बची-खुची फौज को लेकर वहाँ से भागकर ऐसे गायब हो गए जैसे गधे के सिर से सींग।

तब इल्या, चेर्नीगोव शहर में दाखिल हो गया। वह पत्थर के उस बड़े गिरिजाघर के अन्दर गया, जहाँ शहर के लोग छाती पीट-पीटकर रो रहे थे और मरने से पहले एक-दूसरे से गले मिलकर विदा ले रहे थे।

''चेर्नीगोव-निवासियों, नमस्ते!'' इल्या ने उनका ध्यान अपनी तरफ आकर्षित करते हुए कहा—''यह रोना और गले मिलकर अन्तिम नमस्कार करना बन्द करो।''

''इसके सिवाय हम और कर ही क्या सकते हैं? तीन सरदारों ने चेर्नीगोव को घेर रखा है। उनमें से हरेक के साथ चालीस-चालीस हजार की फौज है? हमारे सिर पर मौत नाच रही है, एक बूढ़े चेर्नीगोववासी ने दुःखी स्वर में इल्या को बताया।

''किले की चारदीवारी पर चढ़कर जरा उस मैदान की तरफ देखो, जहाँ दुश्मन की फौजें जमा थीं,'' इल्या ने कहा।

शहरवालों ने किले की चारदीवारी पर चढ़कर देखा तो दंग रह गए। मैदान में तातारियों की लाशें इस तरह बिखरी पड़ी थीं जैसे ओले पड़ने के बाद खेत में अनाज की बालें बिखरी होती हैं। एक भी जीवित फौजी वहाँ खड़ा नजर नहीं आ रहा था। यह देखकर चेर्नीगोव के निवासियों ने झुककर इल्या को नमस्कार किया और रोटी और नमक से उसका स्वागत किया। वे सोना-चाँदी और हीरे-जवाहरात जड़ा कमख्वाब भेंटस्वरूप पेश करते हुए बोले—''वीर युवक-रूसी बहादुर, हमें बताओ तुम कौन हो और तुम्हारे सगे-सम्बन्धी कौन हैं? तुम्हारा नाम क्या है? तुम यहीं चेर्नीगोव में हमारे सरदार बनकर रहो। हम सब तुम्हारा हुक्म बजाएँगे, तुम्हारा आदर करेंगे। हम तुम्हारे लिए खाने-पीने की कभी कमी न होने देंगे। तुम बड़े ठाठ-बाट और सम्मान के साथ यहाँ रहोगे।''

इल्या मूरोमवासी ने इन्कार में अपना सिर हिलाते हुए कहा—''चेर्नीगोव के निवासियों, मैं एक रूसी बहादुर हूँ और मूरोम शहर के नजदीक कराचारोवो नामक गाँव के एक साधारण किसान का बेटा हूँ। मैंने लाभ के लालच में तुम लोगों की रक्षा नहीं की है। मुझे सोना-चाँदी कुछ नहीं चाहिए। मैंने तो रूसी मनुष्यों, सुन्दर कुमारियों, निरीह बच्चों और बूढ़ी माताओं को मुसीबत से छुड़ाकर अपना फर्ज निभाया है। मैं तुम्हारा सरदार नहीं बनना चाहता और न ही धन-दौलत पाना चाहता हूँ। मेरी ताकत ही मेरी दौलत है। मेरा काम है रूस की सेवा करना और उसे दुश्मनों से बचाना।''

तब चेर्नीगोव-निवासियों ने इल्या से अनुरोध किया कि वह कम-से-कम एक दिन तो उनके साथ रहे और उनकी दावत का आनन्द ले। लेकिन इल्या इसके लिए भी राजी नहीं हुआ। वह बोला—''भले लोगों, मैं ठहर नहीं सकता। रूस दुश्मनों के हमलों से कराह रहा है और मुझे जल्दी-से-जल्दी राजा व्लादीमीर के पास पहुँचना है। मुझे रास्ते के लिए कुछ रोटियाँ और प्यास बुझाने के लिए थोड़ा पानी दे दो और इतना बता दो कि कीयेव जाने की सीधी सड़क कौन-सी है।''

चेर्नीगोव के निवासी बहुत दुःखी हुए और सोच में डूब गए।

फिर एक वृद्ध ने बड़े ही दुःखी स्वर में कहा—''हाय! इल्या मूरोमवासी, कीयेव जाने वाली सीधी सड़क तो घास से ढकी हुई है। पिछले तीस साल से कोई भी उस सड़क से नहीं गया है।''

''क्यों? इसकी क्या वजह है?'' इल्या ने आश्चर्य से पूछा।

''उस सड़क पर रहमान के बेटे सीटीबाज डाकू का कब्जा है। वह वहाँ स्मोरोदिनाया नदी के किनारे बलूत के तीन पेड़ों की नौ शाखाओं के ऊपर बैठा रहता है। जब वह चिड़िया की तरह सीटी बजाता है और जंगली जानवर की तरह गरजता है तो सारे पेड़ जमीन पर झुक जाते हैं, फूलों की पंखुड़ियाँ झड़ जाती हैं, घास सूख जाती है और आदमी तथा घोड़े गिरकर ढेर हो जाते हैं।''

एक दूसरे चेर्नीगोववासी ने इल्या को नया रास्ता बताते हुए कहा—''एक दूसरी सड़क भी है लेकिन वह घुमावदार है। तुम उसी सड़क से जाओ। बेशक कीयेव जाने वाली यह सड़क छः सौ मील लम्बी है। पर यह सुरक्षित है।''

इल्या मूरोमवासी कुछ देर तक चुप रहा, फिर उसने अपना सिर झटककर कहा—"मैं बहादुर हूँ। मुझे यह शोभा नहीं देता कि चक्करदार रास्ते से जाऊँ और कीयेव की सीधी सड़क सीटीबाज डाकू के कब्जे में छोड़ दूँ। मैं उस सीधी सड़क से ही जाऊँगा जिस पर तीस साल से कोई नहीं गया है।"

इतना कहकर इल्या कूदकर अपने कत्थई-झबरे घोड़े पर सवार हो गया और पलक झपकते ही आँखों से ओझल हो गया।

इल्या मूरोमवासी अपने घोड़े को बहुत तेज दौड़ाता हुआ चला जा रहा था। कत्थई-झबरा एक पहाड़ी से दूसरी पहाड़ी पर कूदता हुआ, नदियों, झीलों और घाटियों को फाँदता हुआ तूफानी गति से आगे बढ़ा जा रहा था। अन्ततः वह ब्रांस्क नामक जंगल में पहुँचा। वहाँ पहुँचकर कत्थई-झबरा चलते-चलते रुक गया। वह और आगे नहीं बढ़ पा रहा था। वहाँ चारों ओर दलदल ही दलदल थी। घोड़ा पेट तक उसमें धँस गया था।

इल्या कूदकर नीचे उतरा। अपने बाएँ हाथ से उसने कत्थई-झबरे को सँभाला और दाएँ हाथ से बलूत के पेड़ों को जड़ समेत उखाड़-उखाड़कर दलदल के ऊपर बिछाता चला गया। इस तरह जल्दी ही उसने लकड़ी के लट्ठों की एक सड़क तैयार कर दी। यह सड़क बीस मील लम्बी है और रूसी लोग आज तक उसे इस्तेमाल कर रहे हैं।

बलूत के लट्ठों की सड़क पर चलता हुआ इल्या आखिर, स्मोरोदिनाया नदी के पास पहुँच गया। इस नदी का किनारा बहुत चौड़ा था और वह पहाड़ के एक सिरे से दूसरे सिरे तक बहती हुई किसी जंगली जानवर की तरह गरज रही थी। कत्थई-झबरा हिनहिनाते हुए अपने पिछले पैरों पर खड़ा हो गया। फिर एक ही छलाँग में वह नदी पार कर गया।

उस पार बलूत के तीन पेड़ों और नौ शाखाओं के ऊपर सीटीबाज डाकू बैठा हुआ था। बलूत के उन पेड़ों को न तो कोई बाज उड़कर, न कोई जानवर भागकर और न ही कोई साँप रेंगकर पार कर सकता था। प्रत्येक प्राणी सीटीबाज डाकू से डरता था और कोई भी मरना नहीं चाहता था।

जब सीटीबाज डाकू ने घोड़े की टापों की आवाज सुनी तो बलूत के पेड़ों के ऊपर थोड़ा उठकर भयानक आवाज में गरजा—"यह कौन बदमाश घोड़े पर चढ़ा चला आ रहा है, जानता नहीं कि बलूत के इन पेड़ों से आगे

आने की इजाजत किसी को नहीं है? सीटीबाज डाकू की नींद में खलल डालने की जुर्रत किसने की है?"

इतना कह उसने चिड़िया की तरह सीटी बजाई, जंगली जानवर की तरह गरजा और साँप की तरह फुफकारा। इसका यह असर हुआ कि धरती थर्रा उठी, बलूत के दैत्याकार पेड़ काँपने लगे, फूलों की पंखुड़ियाँ झड़ गईं और घास सूख गई।

कत्थई-झबरा घुटनों के बल गिर पड़ा। लेकिन इल्या जीन के ऊपर चट्टान की तरह जमकर बैठा रहा और उसके सिर का एक बाल भी इधर-से-उधर नहीं हुआ। वह रेशम का एक कोड़ा निकालकर घोड़े की पीठ पर मारते हुए गर्जा—"तू एक बहादुर का घोड़ा नहीं, भूसे का बोरा है। क्या इसके पहले तूने कभी चिड़िया की चीं-चीं या साँप की फूँ-फूँ नहीं सुनी थी? खड़ा हो जा अपने पैरों पर और ले चल मुझे सीटीबाज डाकू के ठिकाने की तरफ, वरना मैं तुझे भेड़ियों के सामने फेंक दूँगा।"

कत्थई-झबरे ने इल्या की धमकी सुनी तो फौरन उठकर खड़ा हो गया और डाकू के मचान की तरफ दौड़ पड़ा। सीटीबाज डाकू आश्चर्य से अपने मचान से सिर निकालकर अपनी ओर आ रहे इल्या को घूर रहा था। इल्या ने वक्त नहीं गँवाया। उसने फौरन अपनी तरकश से लोहे का बना एक छोटा-सा तीर निकालकर, जिसका वजन अठारह-बीस सेर से कम नहीं था, अपने धनुष पर चढ़ा लिया। धनुष की जबरदस्त टंकार सुनाई दी। तीर लपका और वह सीटीबाज डाकू की दाईं आँख को छेदता हुआ उसकी खोपड़ी के पीछे से निकल गया।

सीटीबाज डाकू अपने मचान से इस तरह जमीन पर गिरा, जैसे अनाज का बोरा गिरता है। इल्या ने उसे पकड़कर कच्ची खाल के तस्मों से कसकर बाँध दिया और अपनी बाईं रकाब से लटका दिया।

सीटीबाज डाकू इल्या को ताक रहा था। उसकी साँस लेने की भी हिम्मत नहीं हो रही थी।

"क्या ताक रहा है, सीटीबाज? क्या आज से पहले तूने कभी कोई रूसी बहादुर नहीं देखा?"

'अरे, अब क्या होगा?' यह सोच सीटीबाज डाकू मन-ही-मन काँप उठा—'लगता है, अब मेरे आजादी के दिन गए!'

इल्या का कत्थई-झबरा सीधी सड़क पर सरपट दौड़ा जा रहा था। रास्ते में सीटीबाज डाकू का घर था। उसका आँगन पाँच मील लम्बा था। वह सात खम्भों पर टिका हुआ था। उसके चारों ओर लोहे की चारदीवारी थी और चारदीवारी के जंगलों पर जगह-जगह किसी-न-किसी बहादुर का सिर टँगा हुआ था। उस आँगन में सफेद पत्थर का बना हुआ एक शानदार महल खड़ा था, जिसके सुनहरे छज्जे आग की लपटों की तरह दमक रहे थे।

सीटीबाज की बेटी पेल्का ने इल्या के घोड़े को देखा तो वह चिल्लाकर बोली—"हमारा पिता एक देहाती को अपनी रकाब से लटकाए हुए चला आ रहा है!"

डाकू की बीवी ने खिड़की से झाँककर देखा तो उसके होश उड़ गए। वह अपने हाथ उठा चिल्लाई—"बेवकूफ लड़की, तू क्या बक रही है। वह तो गँवार-देहाती है जो तेरे बाप को अपनी रकाब से लटकाए हुए चला आ रहा है!"

यह सुनकर डाकू की लड़की पेल्का दौड़ती हुई आँगन में आई। उसने पचास मन भारी लोहे का एक तख्ता उठाया और उसे इल्या मूरोमवासी की ओर फेंका। लेकिन इल्या ने तख्ते को अपने एक मजबूत हाथ से पकड़ लिया और वापस पेल्का की तरफ उछाल दिया। वह जाकर पेल्का को लगा। वह जहाँ की तहाँ ढेर हो गई।

यह देख सीटीबाज की बीवी इल्या के कदमों पर गिर पड़ी और गिड़गिड़ाते हुए फरियाद करने लगी—"बहादुर! तुम्हारा तेज घोड़ा जितना सोना-चाँदी, हीरे-जवाहरात ले जा सकता है, ले जाओ, पर मेरे पति को छोड़ दो!"

"मैं पाप की कमाई नहीं लेता। तू मुझे जो कुछ देना चाहती है, वह रूसी खून और बच्चों के आँसुओं से सना हुआ है। तुम लोगों ने अपनी दौलत गरीब किसानों को लूटकर जमा की है।" इल्या कड़ककर बोला—"जब डाकू दूसरे के कब्जे में होता है, तब वह हमेशा बड़े मीठे बोल बोलता है। पर एक बार उसे छोड़ दो तो वह फिर ओछेपन पर उतर आता है। मैं सीटीबाज डाकू को अपने साथ कीयेव शहर ले जाऊँगा और वहाँ उसके बदले में मुझे जो रुपया मिलेगा, उससे कालाच (गेहूँ की सफेद गोल पावरोटी) और क्वास (काली रोटी और तरह-तरह के फलों से बनाया गया

पेय। कभी-कभी इसमें हल्की शराब जैसा नशा भी होता है।) खरीदकर खाऊँगा और शराब पी लूँगा।"

इतना कह इल्या ने अपना घोड़ा मोड़ा और कीयेव शहर की तरफ सरपट दौड़ गया। सीटीबाज डाकू खामोश था और उसके अंग निश्चल थे।

इल्या कीयेव शहर की गलियों में से होता हुआ राजा के महल के सामने जा पहुँचा। अपने घोड़े को उसने एक खम्भे से बाँध दिया और सीटीबाज डाकू को रकाब से ही लटका रहने दिया। फिर वह खुद महल के बड़े दीवानखाने में पहुँच गया।

वहाँ राजा व्लादीमीर अपनी पत्नी के साथ बैठा खाना खा रहा था। उसके चारों ओर मेजें पड़ी थीं जिनके सामने बहुत-से रूसी बहादुर बैठे हुए थे। इल्या अन्दर आया और ड्योढ़ी पर रुका। फिर झुककर प्रणाम करते हुए बोला—"प्रणाम, राजा व्लादीमीर और रानी अपराक्सीया! क्या आप लोग एक अजनबी को अन्दर आने की इजाजत देंगे।"

तेजस्वी व्लादीमीर ने पूछा—"वीर युवक, तुम कहाँ से आए हो और तुम्हारा नाम क्या है?"

"मेरा नाम इल्या है। मैं मूरोम शहर के नजदीक कराचारोवो नामक गाँव के एक किसान का बेटा हूँ। मैं चेर्नीगोव से आने वाली सीधी सड़क से आ रहा हूँ। सीटीबाज डाकू इस समय मेरे कब्जे में है। मैं उसे बतौर उपहार आपके लिए लाया हूँ। वह बाहर आपके आँगन में मेरे घोड़े की रकाब से बँधा है।"

इल्या की बात सुनते ही राजा, रानी और सारे बहादुर एकदम उछल पड़े और इल्या के पीछे-पीछे आँगन में पहुँच गए।

सचमुच सीटीबाज डाकू घोड़े की रकाब से इस तरह लटका हुआ था जैसे भूसे का बोरा लटका हो और वह अपनी बाईं आँख से कीयेव शहर और राजा व्लादीमीर को देख रहा था।

"हाँ तो अब चिड़िया की तरह सीटी बजाकर और जंगली जानवर की तरह गरजकर जरा हम लोगों को भी सुनाओ," राजा व्लादीमीर ने डाकू से कहा।

लेकिन सीटीबाज डाकू ने अपना मुँह दूसरी तरफ फेरते हुए कहा—"तुमने मुझे कैदी नहीं बनाया है। इसलिए तुम्हें मुझे हुक्म देने का कोई अधिकार

नहीं है।"

तब राजा ब्लादीमीर इल्या मूरोमवासी की तरफ मुड़कर बोला—"इल्या इवानोविच! तुम इससे कहो कि मैंने जैसा कहा, यह वैसा करे! तभी हम जान पाएँगे कि यह सीटीबाज डाकू ही है।"

"बहुत अच्छा हुजूर! लेकिन इसका अगर कोई बुरा नतीजा निकले तो मुझे दोष न दीजिएगा। मैं आपको और रानी को अपने कफ्तान (चोगे के ढंग की पुरानी पोशाक) से ढके देता हूँ। इससे आपको कोई हानि न होने पाएगी।" और फिर राजा और रानी को अपने कफ्तान से ढकने के बाद वह सीटीबाज डाकू से बोला—"अब तुम जैसा कहा गया है, वैसा करो!"

"मैं सीटी नहीं बजा सकता," डाकू ने कहा—"मेरा गला सूखा हुआ है। मुझे भूख लग रही है।"

इल्या ने राजा से अनुरोध किया।

"महाराज! इसे अठारह सेर मीठी, अठारह सेर कड़वी बीयर और अठारह सेर शहद की बहुत तेज शराब पिलाई जाए, साथ में नाश्ते के तौर पर गेहूँ की एक कालाच भी दी जाए।"

राजा ने तुरन्त सीटीबाज डाकू के खाने-पीने का इन्तजाम करने का आदेश दिया। सीटीबाज को खाने-पीने का सामान दे दिया गया। खा-पीकर वह सीटी बजाने के लिए तैयार हो गया।

"लेकिन सीटीबाज डाकू, देखना..." इल्या ने उसे सावधान किया—"तुम अपनी पूरी ताकत लगाकर सीटी न बजाना, धीरे-धीरे सीटी बजाना और बहुत हल्के-से गरजना। नहीं तो याद रखना, तुम्हारी खैरियत नहीं है!"

परन्तु सीटीबाज ने इल्या का कहना नहीं माना। वह तो कीयेव शहर को नेस्तनाबूद कर राजा तथा रानी और सारे रूसी बहादुरों को मार डालना चाहता था।

अतः जितनी जोर से वह बजा सकता था, उसने सीटी बजाई और बड़े जोरों के साथ गरजा तथा बड़ी तेज फुफकार मारी!

जबरदस्त शोर मच गया।

मकानों के ऊपर की मंजिलें डोल गईं, छज्जे दीवारों से अलग जा पड़े, खिड़कियों के शीशे टूट गए, घोड़े अपने अस्तबलों से भाग गए। सारे बहादुर सैनिक जमीन पर गिर पड़े और चौपायों की भाँति रेंगने लगे। राजा

ब्लादीमीर और रानी इल्या के कफ्तान में छिपे थर-थर काँप रहे थे।

इल्या को बहुत गुस्सा आया। वह गरजा—"मैंने तुमको राजा और रानी का दिल खुश करने के लिए कहा था, परन्तु तुम अपनी हरकत से बाज नहीं आए। अब मैं तुम्हारा हिसाब साफ किए देता हूँ। आज के बाद तुम कभी किसी के माँ-बाप को न रुला पाओगे और न ही नववधुओं को विधवा और नन्हे बच्चों को अनाथ बना पाओगे।" इतना कहनें के साथ ही इल्या ने अपनी तलवार निकालकर सीटीबाज का सिर काट डाला। सीटीबाज डाकू का अन्त हो गया।

"धन्यवाद, इल्या मूरोमवासी!" राजा ब्लादीमीर ने खुश होकर कहा—"आज से तुम्हें मेरी फौज का प्रधान सेनापति नियुक्त किया जाता है। जब तक तुम जिन्दा हो, यहीं कीयेव में रहो और अपनी मातृभूमि तथा देशवासियों की सेवा करो।"

सचमुच इल्या जब तक जीवित रहा, देश और देशवासियों की सेवा करना ही उसके जीवन का मकसद रहा।

मूर्ख भेड़िया

बहुत समय पहले रूस के पश्चिमी क्षेत्र के पर्वतीय भाग की तराई में एक वृद्ध दम्पति रहते थे। दोनों अपने छोटे से घर में सुखपूर्वक जीवनयापन कर रहे थे। एक दिन वृद्ध अपनी पत्नी से बोला—"मैं मछली पकड़ने जा रहा हूँ। जब तक मैं लौटूँ, तुम कुछ समोसे बनाकर तैयार रखना।"

पत्नी को हिदायत दे पति अपनी स्लेज (बर्फ पर चलने वाली) गाड़ी में बैठकर नदी की ओर चल पड़ा। उस दिन बूढ़े का भाग्य अच्छा था। उसने ढेर सारी मछलियाँ पकड़ीं। मछलियाँ गाड़ी में भरकर जब वह लौट रहा था तो उसने एक लोमड़ी को सड़क के बीचोबीच पड़े देखा।

बूढ़ा स्लेज गाड़ी से उतरकर लोमड़ी के पास गया। उसने लोमड़ी को हिलाया-डुलाया, मगर लोमड़ी टस-से-मस न हुई। वह ऐसे पड़ी रही, जैसे मर गई हो।

बूढ़े ने सोचा—'अरे वाह, यह तो खूब बढ़िया चीज मिल गई! इसकी खाल से मेरी पत्नी के गरम कोट का बहुत बढ़िया कॉलर तैयार हो जाएगा।'

यही सोचकर उसने लोमड़ी को उठाकर स्लेज गाड़ी में डाल लिया और खुद घोड़े के साथ, आगे-आगे पैदल चलने लगा।

वह लोमड़ी बड़ी चालाक थी। जब बूढ़ा मछलियाँ पकड़ रहा था, तभी से लोमड़ी की नजर उस पर थी। मछलियों को देख-देखकर उसके मुँह में पानी आ रहा था। वह बड़ी तेजी से कोई ऐसी तरकीब सोच रही थी, जिससे मछलियों पर हाथ साफ किया जा सके। उसकी उसी तरकीब का यह परिणाम था कि इस समय वह बूढ़े किसान की स्लेज गाड़ी में थी। यह उसकी योजना का पहला चरण था।

अब उसने अपनी योजना के दूसरे चरण को क्रियान्वित करना शुरू किया। उसने चुपचाप एक-एक मछली गाड़ी से उठाकर बाहर फेंकनी शुरू कर दी। बूढ़ा आगे-आगे चल रहा था। पीछे क्या हो रहा है, उसको इसका कुछ पता नहीं था। जब लोमड़ी सारी मछलियाँ फेंक चुकी तो चुपचाप वह गाड़ी से कूदकर खिसक गई। बूढ़ा अपनी ही मस्ती में गाता-गुनगुनाता घर की ओर बढ़ा जा रहा था।

बूढ़े ने घर पहुँचते ही अपनी बीवी को पुकारकर कहा—"भाग्यवान! देखो, मैं तुम्हारे लिए ढेर सारी मछलियाँ और तुम्हारे गरम कोट के लिए मरी लोमड़ी लाया हूँ। लोमड़ी की खाल का कॉलर लगते ही तुम्हारे कोट में चार चाँद लग जाएँगे।"

अपने कोट में लोमड़ी की खाल के कॉलर की बात सुनते ही बुढ़िया खुशी से उछल पड़ी। लपकती-झपकती बुढ़िया बाहर आई लेकिन गाड़ी के निकट पहुँचते ही वह चौंक पड़ी। गाड़ी में तो कुछ भी नहीं था—न मछली, न लोमड़ी।

अब तो बुढ़िया को बहुत गुस्सा आया और जोर-जोर से बूढ़े को बुरा-भला कहते हुए वह बोली—"भला यह भी कोई उम्र है मजाक करने की—मुझे बेवकूफ बनाते हो—कहाँ है मछलियाँ? कहाँ है लोमड़ी?"

बुढ़िया की डाँट-फटकार सुनकर बूढ़ा चकराया। उसने गाड़ी के निकट जाकर देखा तो उसकी आँखें भी आश्चर्य से फटी रह गईं। मछलियों के साथ लोमड़ी को भी गायब देखकर वह समझ गया कि लोमड़ी ने मृत होने का नाटक करके उसे बेवकूफ बनाया है।

वह बोला—''क्रोध क्यों करती हो भाग्यवान! मैंने जो कहा था, सच था...मगर अब पता चला कि जिस लोमड़ी को मैंने मरा जानकर गाड़ी में डाला था, वह मुझे ठगकर भाग गई।'' कहते हुए बूढ़े ने उसे पूरी बात बता दी।

लोमड़ी की चालाकी भरी करतूत सुनकर बुढ़िया भी ठगी-सी रह गई। उसे बड़ा दुःख हुआ कि नाहक ही उसने अपने पति को खरी-खोटी सुना दी।

उधर, उस चालाक लोमड़ी ने सड़क पर बिखरी हुई सारी मछलियाँ जमा करके एक ढेर लगाया और भोजन करने में जुट गई।

तभी उधर से एक भेड़िया गुजरा। लोमड़ी के ठाट देखकर उसके मुँह में पानी आ गया। काश, उसे भी कुछ मछलियाँ खाने को मिल जातीं, यही सोचकर अपनी वाणी में शहद घोलकर वह बोला—''भोजन कर रही हो बहना! खाओ, खूब मजे से खाओ।''

लोमड़ी गुर्राई—''अरे वह तो मैं खाऊँगी ही। इतनी मेहनत से मछलियाँ पकड़ी हैं। मगर खबरदार, तुम मेरे करीब न आना।''

''कुछ मछलियाँ मुझे भी दे दो न,'' भेड़िया गिड़गिड़ाया।

''नहीं, खुद पकड़कर लाओ और फिर खाओ!''

''पर मुझे तो मछली पकड़ना नहीं आता।''

''छिः! मैं पकड़ सकती हूँ तो तुम क्यों नहीं पकड़ सकते?'' लोमड़ी डपटकर बोली—''नदी पर जाओ—वहाँ आसपास बर्फ में कहीं सूराख देखो तो उसमें अपनी पूँछ लटकाकर बैठ जाना और कहते जाना—'कस के पकड़ री मछली! बाहर निकल री मछली!'' लोमड़ी भेड़िये को मछली पकड़ने का तरीका बताते हुए आगे बोली—''मछली तुम्हारी पूँछ कसकर पकड़ लेगी। जितनी देर तुम वहाँ बैठे रहोगे, उतनी ही ज्यादा मछलियाँ आकर तुम्हारी पूँछ पकड़ती जाएँगी। बस, इस प्रकार तुम्हारे पास भी मछलियों का एक बड़ा ढेर हो जाएगा। तब मजे से खाना। मेहनत से ही मेवा मिलती है, भइया—अब जाओ।''

लोमड़ी से मछली पकड़ने का गुर सीखकर मूर्ख भेड़िया बहुत खुश हुआ और बिना एक भी पल गँवाए वह नदी पर जा पहुँचा वहाँ बर्फ में बने एक सूराख में अपनी पूँछ डालकर बैठ गया और लोमड़ी द्वारा बताया गया मन्त्र जपने लगा—

''कसके पकड़ री मछली,
बाहर निकल री मछली।''

उधर लोमड़ी ने भी अपना भोजन समाप्त करके सोचा कि चलो अब मूर्ख महाराज को देखा जाए कि क्या गुल खिला रहे हैं। यही सोचकर वह नदी पर आ गई और भेड़िये की हालत देखकर जोर-जोर से हँसने लगी। वह सोच रही थी कि कुछ देर बाद जब इसको अपनी गलती का पता चलेगा तो अपना सिर पीट लेगा। फिर वह मुस्कराती हुई भेड़िये के चारों ओर घूम-घूमकर बड़बड़ाने लगी—

''चमको-चमको तारे, धुँधले-पीले सारे!
भेड़िये की इस पूँछ को बर्फ में ही जमा दो!''

''बहना, यह तुम क्या बड़बड़ा रही हो?'' भेड़िये ने लोमड़ी से पूछा।

''मैं भगवान् से प्रार्थना कर रही हूँ कि तुम्हारी पूँछ में बहुत-सी मछलियाँ आकर फँस जाएँ।'' लोमड़ी ने मक्कारी से जवाब दिया और फिर घूम-घूमकर गाने लगी—

''चमको-चमको तारे धुँधले-पीले सारे!
भेड़िये की इस पूँछ को बर्फ में ही जमा दो!''

लोमड़ी की मक्कारी से अनभिज्ञ बेचारा भेड़िया सारी रात बर्फ की उसी सूराख में पूँछ डाले बैठा रहा। नतीजा यह हुआ कि उसकी पूँछ बर्फ में जमने लगी। जैसे-जैसे उसकी पूँछ बर्फ में जमती जा रही थी, वैसे-वैसे उसमें भारीपन आता जा रहा था। मूर्ख भेड़िया समझ रहा था कि ढेर सारी मछलियों ने उसकी पूँछ को पकड़ लिया है।

सुबह होने पर जब उसने उठना चाहा तो वह उठ नहीं सका। खुश होकर वह बोला—''बाप रे बाप! कितनी सारी मछलियाँ मेरी पूँछ में आकर फँस गई हैं।'' उसने मन में सोचा—'अब क्या करूँ? मुझसे तो वे बाहर भी नहीं निकाली जा रही हैं। लगता है, किसी को मदद के लिए बुलाना पड़ेगा।'

उसी समय एक औरत वहाँ पानी भरने आई और भेड़िये को देखकर

वह डर के मारे चिल्ला उठी—"भेड़िया! भेड़िया!! मारो भेड़िये को!"

कहीं लोग पिटाई न कर दें, यही सोचकर भेड़िये ने भागने की बहुत कोशिश की, मगर वह अपनी पूँछ नहीं निकाल सका। औरत ने जब देखा कि शोर मचाने से भी भेड़िया नहीं भाग रहा है तो उसे बहुत गुस्सा आया। उसने डोल एक तरफ फेंका और डोल लटकाने के डंडे से उसे मारने लगी। उसने भेड़िये को खूब मारा। बेचारा भेड़िया पूरा जोर लगाकर अपनी पूँछ खींच रहा था, खूब खींची। आखिरकार उसकी पूँछ उखड़ गई। परन्तु भेड़िया पूँछ की परवाह न करते हुए जान बचाकर वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

वह समझ चुका था कि लोमड़ी ने उसे मूर्ख बनाया है—'थोड़ा सब्र कर चालाक लोमड़ी! तूने जो कुछ किया है, मैं तुझे उसका मजा चखाकर ही रहूँगा।' भेड़िये ने मन-ही-मन लोमड़ी से बदला लेने की ठान ली। उधर मक्कार लोमड़ी भी जानती थी कि भेड़िया उससे बदला जरूर लेगा। मगर वह इतनी चालाक और चुस्त थी कि भेड़िये को बहलाने के लिए उसने पहले ही एक उपाय सोच रखा था।

एक दिन मौका पाकर लोमड़ी एक औरत के झोंपड़े में घुस गई। वहाँ परात में गूँधा हुआ आटा रखा था। लोमड़ी ने पेट भरकर गूँधा हुआ आटा खाया, और कुछ अपने सिर पर लगा लिया। फिर इत्मीनान से घर से बाहर आई और सड़क पर लेटकर कराहने लगी। उसे पता था कि भेड़िया उसकी तलाश में आस-पास ही कहीं भटक रहा होगा।

उधर पूँछ खो देने के कारण गुस्से से पागल पूँछ मुँडा भेड़िया लोमड़ी की तलाश में घूमता उसी दौरान उस सड़क से गुजरा। सड़क पर पड़ी लोमड़ी को देख उसके मन में बदले की आग भड़क उठी। किसी तरह अपने क्रोध पर नियन्त्रण कर वह लोमड़ी की तरफ बढ़ा। लोमड़ी के निकट पहुँचकर वह उलाहना देकर बोला—"लोमड़ी बहना, अच्छा ढंग सिखाया तुमने मुझे मछली पकड़ने का! देखो, मेरे सारे बदन पर डण्डे के निशान पड़ गए हैं और मैं अपनी पूँछ भी गँवा बैठा हूँ।"

लोमड़ी ने कराहते हुए जवाब दिया—"अरे भइया, मैंने तो तुम्हारा भला ही सोचा था, मगर क्या करूँ जो बुरा हो गया। यह मनुष्य जाति तो शुरू से ही हमारी दुश्मन है। अब देखो न, तुम्हारी तो पूँछ ही गई है, सिर तो सही-सलामत है। पर मुझे देखो, मेरा तो पूरा सिर चकनाचूर हो गया है।

मार-मारकर उन्होंने मेरा भेजा निकाल दिया है। अब तो मैं चलने से भी मजबूर हूँ। तुम चाहो तो अपना बदला चुकाने के लिए मेरे प्राण ले लो।"

"अरे हाँ, यह तो मैं देख रहा हूँ, बहना।" भेड़िये को लोमड़ी पर दया आ गई—"आओ, मेरी पीठ पर सवार हो जाओ। तुम जहाँ कहोगी, मैं तुम्हें वहीं पहुँचा दूँगा।"

लोमड़ी फौरन भेड़िये की पीठ पर सवार हो गई और दोनों चल पड़े। भेड़िया लोमड़ी से बदला लेने की बात भूल ही गया था। लोमड़ी अपनी सफलता पर फूली न समा रही थी। वह भेड़िये की पीठ पर बैठी हुई धीरे-धीरे गुनगुना रही थी—

'जो पिटा और कुटा वह है घोड़ा बना,
जो न पिटा न कुटा वह सवारी करे!
जो पिटा और कुटा वह है घोड़ा बना,
जो न पिटा न कुटा वह सवारी करे!'

"बहना, यह तुम क्या बड़बड़ा रही हो?" भेड़िये ने पूछा।

"तुम पर जुल्म करने वालों को कोस रही हूँ भइया," लोमड़ी तपाक से बोली।

बेचारा भेड़िया फिर लोमड़ी की बात पर विश्वास कर बैठा।

इस तरह चालाक लोमड़ी ने न केवल भेड़िये की बदले की भावना को ठण्डा कर दिया, बल्कि मजे से उसकी सवारी भी कर रही थी।

लोमड़ी मन-ही-मन भेड़ियें की मूर्खता पर हँसती हुई फिर गुनगुनाने लगी—

"जो पिटा और कुटा, वह है घोड़ा बना,
जो न पिटा न कुटा, वह सवारी करे।"

अक्ल का कमाल

एक बार एक सिपाही रिटायर होने के बाद अपने घर लौट रहा था। वर्षों घर से दूर नौकरी करने के बाद भी उसकी जेब खाली थी। उसका मन बड़ा उदास था। पिछले काफी अरसे से उसने अपने घरवालों की कोई खैर-खबर नहीं ली थी। वह तो यह भी नहीं जानता था कि उसके घर में कोई जिन्दा भी है कि नहीं। चलते-चलते वह एक गाँव में पहुँचा। तब तक रात हो चुकी थी। वह काफी थक गया था और उसे भूख भी जोर की लगी थी, अतः उसने एक घर का दरवाजा खटखटाया।

उस घर में एक बुढ़िया रहती थी। दरवाजा खोल बुढ़िया ने सिपाही को

घूरकर देखा और बोली—''कौन हो तुम...?''

''मैं एक सिपाही हूँ। रिटायर होकर अपने घर लौट रहा हूँ। मुझे बहुत दूर जाना है। कुछ देर आराम करना चाहता हूँ।''

''आओ, अन्दर आ जाओ...।''

सिपाही बुढ़िया के साथ मकान में दाखिल हो गया।

सिपाही को उम्मीद थी कि बुढ़िया उसे कुछ खिलाएगी-पिलाएगी। लेकिन बुढ़िया बड़ी कंजूस थी। उसने तो एक गिलास पानी तक नहीं पूछा।

कुछ देर बाद सिपाही ने ही बुढ़िया से पूछा—''कुछ खाने को मिलेगा अम्मा?''

''अरे बेटा, मैंने तो खुद ही कल से कुछ नहीं खाया है,'' यह कहकर बुढ़िया ने सिपाही को टाल दिया। सिपाही चुप हो गया।

तभी उसे बेंच के नीचे एक बिना मूठ की कुल्हाड़ी पड़ी दिखाई दी। वह कुल्हाड़ी उठाता हुआ बोला—''चलो, इस कुल्हाड़ी का ही दलिया बना लेते हैं।''

बुढ़िया उसका मुँह ताकने लगी कि कहीं यह सिपाही पागल तो नहीं है, अतः उसने उसे रोकते हुए कहा—''अरे, कुल्हाड़ी का भी कहीं दलिया बनता है?''

''क्यों नहीं? जरा मुझे एक बर्तन तो दो, फिर देखना कि कुल्हाड़ी का मजेदार दलिया कैसे बनता है। एक बार बनाकर खाया था आज तक मुँह में स्वाद है।''

बुढ़िया के लिए तो यह हैरानी की बात थी, वह फौरन ही एक बर्तन ले आई। सिपाही ने कुल्हाड़ी को खूब धो-पोंछकर बर्तन में रखा और कुछ पानी डालकर चूल्हे पर चढ़ा दिया।

अचम्भे से बुढ़िया की आँखें मानो बाहर को निकली पड़ रही थीं।

सिपाही एक कलछी लेकर बर्तन में चलाने लगा। फिर उसने थोड़ा-सा पानी कलछी में निकालकर उसे चखा।

''बहुत जल्दी तैयार हो जाएगा।'' वह बोला—''मगर क्या करूँ, मेरे पास नमक तो है ही नहीं। नमक बगैर दलिये का क्या स्वाद आएगा।''

बुढ़िया उस अद्भुत दलिये का स्वाद चखने के लिए बेचैन हो रही थी—''मेरे पास है थोड़ा-सा नमक।'' वह उठकर गई और नमक ले आई।

अक्ल का कमाल

एक बार एक सिपाही रिटायर होने के बाद अपने घर लौट रहा था। वर्षों घर से दूर नौकरी करने के बाद भी उसकी जेब खाली थी। उसका मन बड़ा उदास था। पिछले काफी अरसे से उसने अपने घरवालों की कोई खैर-खबर नहीं ली थी। वह तो यह भी नहीं जानता था कि उसके घर में कोई जिन्दा भी है कि नहीं। चलते-चलते वह एक गाँव में पहुँचा। तब तक रात हो चुकी थी। वह काफी थक गया था और उसे भूख भी जोर की लगी थी, अतः उसने एक घर का दरवाजा खटखटाया।

उस घर में एक बुढ़िया रहती थी। दरवाजा खोल बुढ़िया ने सिपाही को

घूरकर देखा और बोली—''कौन हो तुम...?''

''मैं एक सिपाही हूँ। रिटायर होकर अपने घर लौट रहा हूँ। मुझे बहुत दूर जाना है। कुछ देर आराम करना चाहता हूँ।''

''आओ, अन्दर आ जाओ...।''

सिपाही बुढ़िया के साथ मकान में दाखिल हो गया।

सिपाही को उम्मीद थी कि बुढ़िया उसे कुछ खिलाएगी-पिलाएगी। लेकिन बुढ़िया बड़ी कंजूस थी। उसने तो एक गिलास पानी तक नहीं पूछा।

कुछ देर बाद सिपाही ने ही बुढ़िया से पूछा—''कुछ खाने को मिलेगा अम्मा?''

''अरे बेटा, मैंने तो खुद ही कल से कुछ नहीं खाया है,'' यह कहकर बुढ़िया ने सिपाही को टाल दिया। सिपाही चुप हो गया।

तभी उसे बेंच के नीचे एक बिना मूठ की कुल्हाड़ी पड़ी दिखाई दी। वह कुल्हाड़ी उठाता हुआ बोला—''चलो, इस कुल्हाड़ी का ही दलिया बना लेते हैं।''

बुढ़िया उसका मुँह ताकने लगी कि कहीं यह सिपाही पागल तो नहीं है, अतः उसने उसे रोकते हुए कहा—''अरे, कुल्हाड़ी का भी कहीं दलिया बनता है?''

''क्यों नहीं? जरा मुझे एक बर्तन तो दो, फिर देखना कि कुल्हाड़ी का मजेदार दलिया कैसे बनता है। एक बार बनाकर खाया था आज तक मुँह में स्वाद है।''

बुढ़िया के लिए तो यह हैरानी की बात थी, वह फौरन ही एक बर्तन ले आई। सिपाही ने कुल्हाड़ी को खूब धो-पोंछकर बर्तन में रखा और कुछ पानी डालकर चूल्हे पर चढ़ा दिया।

अचम्भे से बुढ़िया की आँखें मानो बाहर को निकली पड़ रही थीं।

सिपाही एक कलछी लेकर बर्तन में चलाने लगा। फिर उसने थोड़ा-सा पानी कलछी में निकालकर उसे चखा।

''बहुत जल्दी तैयार हो जाएगा।'' वह बोला—''मगर क्या करूँ, मेरे पास नमक तो है ही नहीं। नमक बगैर दलिये का क्या स्वाद आएगा।''

बुढ़िया उस अद्‌भुत दलिये का स्वाद चखने के लिए बेचैन हो रही थी—''मेरे पास है थोड़ा-सा नमक।'' वह उठकर गई और नमक ले आई।

सिपाही ने नमक डालकर उसे फिर चखा।

"थोड़ा-सा अधकुटा गेहूँ होता तो मजा ही आ जाता," उसने फिर कहा।

बुढ़िया कुठियार में गई और दलिये से भरी एक थैली निकाल लाई और बोली—"लो, जितनी जरूरत हो डाल दो! दलिया कम नहीं पड़ना चाहिए।"

सिपाही ने दलिया बर्तन में डाल दिया और उसे चलाता रहा। अन्त में उसने उसे फिर चखा। बुढ़िया टकटकी बाँधे उसे देख रही थी।

"अहा, बड़ा स्वादिष्ट बना है।" सिपाही बोला—"बस, जरा-सा मक्खन और होता तो फिर क्या कहने थे।"

बुढ़िया थोड़ा-सा मक्खन भी ले आई। सिपाही ने दलिये में मक्खन भी डाल दिया।

"अब एक चमचा ले आओ अम्मा, दलिया तैयार है...।"

बुढ़िया चम्मच ले आई तो दोनों ने दलिया खाना शुरू कर दिया। बुढ़िया खाती जाती और तारीफ करती जाती।

"भई वाह! कुल्हाड़ी का दलिया इतना मजेदार बनता है, यह तो मैंने कभी सोचा ही न था!"

सिपाही मन-ही-मन हँसता हुआ दलिया खा रहा था। उसने बातों के जाल में बुढ़िया को उलझाकर आखिरकार अपने खाने का इन्तजाम कर ही लिया था। इसे कहते हैं अक्ल का कमाल।

नन्ही-सी जान

इस दुनिया में जहाँ अच्छे लोग पाए जाते हैं, वहीं बुरे लोगों की भी कोई कमी नहीं है। सही बात तो यह है कि दुनिया में अच्छे लोगों की तादाद कम और खराब की अधिक है। कुछ लोग तो इतने बुरे होते हैं कि बुराई के अलावा कुछ कर ही नहीं पाते। ऐसे लोगों के साथ कितनी ही भलाई क्यों न करो, वे कभी उपकार नहीं मानते। न ही उन्हें कभी अपने किए पर शर्म महसूस होती है। वे पक्के ढीठ और बेशर्म होते हैं।

खव्रोशेच्का नामक एक छोटी-सी बच्ची, दुर्भाग्यवश, ऐसे ही एक परिवार के बीच आ फँसी थी। यह यतीम थी और उस परिवार ने घर का

काम लेने की गर्ज से उसे अपने घर में रख लिया था। घर का काम कर-करके उसकी बुरी हालत हो गई थी। फिर भी बात-बात पर उसकी जवाब-तलबी हो जाया करती थी।

उस घर की मालिकिन की तीन बेटियाँ थीं। सबसे बड़ी एक आँख वाली, दूसरी दो आँखों वाली और तीसरी, सबसे छोटी तीन आँखों वाली थी। तीनों बहनें दिन-भर कुछ काम न करके फाटक पर बैठी रहतीं और गली की रौनक देखा करती थीं।

खव्रोशेच्का उनके लिए सिलाई करती, सूत कातती और कपड़ा बुनती थी। उसके इस काम में एक चितकबरी गाय उसकी मदद किया करती थी। वह बड़ी चमत्कारी गाय थी।

छोटी खव्रोशेच्का जब भी काम से थोड़ी फुर्सत पाती तो बाहर खेत में चली जाती और उस चितकबरी गाय के गले में बाँहें डालकर उसे अपना दुःख-दर्द सुनाती थी।

"मेरी प्यारी चितकबरी!" वह कहती—"वे मुझे पीटते और डाँटते हैं। मुझे भूखों मारते हैं और फिर रोने भी नहीं देते। मुझे कल तक पाँच पूद (एक पूद सोलह कि.ग्रा. के बराबर) पटसन कातना, बुनना, धोना और लपेटकर देना है।"

और गाय जवाब में कहती—"मेरी नन्ही गुड़िया, तुम्हें मेरे एक कान में दाखिल होकर दूसरे कान से बाहर निकलना भर है बस, तुम्हारा सब काम हो जाएगा।"

गाय जैसा कहती थी, खव्रोशेच्का वैसा ही करती थी और कपड़ा बुना, धुला और लिपटा तैयार पड़ा नजर आता।

ऐसा अक्सर ही होता था।

छोटी खव्रोशेच्का तब कपड़े के थानों को अपनी मालिकिन के पास ले जाती। मालिकिन उन्हें देखकर बड़बड़ाती और सन्दूक में बन्द करके उस नन्ही-सी जान को पहले से भी अधिक काम दे देती।

नन्ही-सी जान फिर चितकबरी गाय के पास जाती, उसके गले में बाँहें डालकर उसे थपथपाती। फिर एक कान में दाखिल होकर दूसरे में से निकल आती और तैयार कपड़ा लेकर मालिकिन के पास पहुँच जाती। मालिकिन को बड़ी हैरानी होती। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह नन्ही-सी

लड़की इतना काम इतनी जल्दी अकेले कैसे कर लेती है?

एक दिन बुढ़िया ने अपनी एक आँख वाली बेटी को अपने पास बुलाया और कहा—"मेरी अच्छी बेटी! मेरी सुन्दर बेटी!! जाओ और जाकर देखो कि इस यतीम लड़की के काम में कौन इसकी मदद करता है।"

एक आँख वाली लड़की, खव्रोशेच्का के साथ खेत में तो जा पहुँची, मगर वह अपनी माँ का आदेश भूल गई और धूप से परेशान होकर छाँव में जा लेटी। खव्रोशेच्का बड़बड़ाई—"सोओ, एक आँख! सोओ!'

लड़की की आँख बन्द होती गई और वह सो गई। जब वह सो गई तो हमेशा की तरह गाय ने कपड़ा बुना, धोया और लपेट दिया। एक आँख वाली कुछ भी न जान सकी। अतः वह अपनी माँ को भी कुछ न बता सकी। मालिकिन ने दूसरे दिन अपनी दूसरी दो आँखों वाली बेटी को बुलाकर कहा—"मेरी अच्छी बेटी! मेरी प्यारी सुन्दर बिटिया!! जाओ और जाकर देखो कि इस यतीम लड़की की, इसके काम में कौन मदद करता है।"

दूसरे दिन दो आँखों वाली, खव्रोशेच्का के साथ खेत में गई, मगर वह भी अपनी माँ की बात भूल गई और धूप से परेशान होकर छाँव में जाकर लेट गई। छोटी खव्रोशेच्का ने लोरी गाई—"सोओ, नन्ही आँख! सोओ, दूसरी आँख, सोओ।"

दो आँखों वाली की दोनों आँखें बन्द हो गईं और वह सो गई। जब वह सो गई तो गाय ने कपड़ा बुना, धोया और लपेटकर तैयार कर दिया।

दूसरी लड़की भी अपनी माँ को कुछ न बता सकी।

बुढ़िया बेहद नाराज हुई। तीसरे दिन उसने अपनी तीन आँखों वाली तीसरी बेटी को खव्रोशेच्का के साथ भेज दिया। उस दिन उसने खव्रोशेच्का को पहले से अधिक काम करने के लिए दिया था।

तीन आँखों वाली देर तक धूप में खेलती और कूदती-फाँदती रही। अन्त में वह परेशान होकर छाँव में जाकर लेट गई। तब छोटी खव्रोशेच्का बुदबुदाने लगी—"सोओ, नन्ही आँख! सोओ, दूसरी आँख, सोओ।'

मगर वह तीसरी आँख के बारे में बिलकुल भूल गई। तीन में से दो आँखें सो गईं, मगर तीसरी आँख जगी रही और उसने जो कुछ हुआ, वह सब देख लिया।

तीन आँखों वाली ने घर पहुँचकर माँ को वह सब कुछ बता दिया, जो उसने देखा था। बुढ़िया बेहद खुश हुई अगले ही दिन उसने अपने पति से कहा—"जाओ, जाकर चितकबरी गाय को मार डालो।"

पति बहुत हैरान हुआ और उसने विरोध किया—"तुम्हारा सिर फिर गया है, क्या? वह गाय तो बहुत अच्छी और छोटी उम्र की है। क्यों मेरे हाथ से नाहक हत्या करवाना चाहती हो?"

"ज्यादा बहस करने की जरूरत नहीं है। बस, उसे मार डालो!" बीवी ने जोर देकर कहा।

पति की एक न चली और विवश होकर उसने अपनी छुरी तेज करनी शुरू कर दी।

छोटी खव्रोशेच्का ने जब यह देखा तो खेत की तरफ दौड़ी। वहाँ पहुँचकर उसने अपनी बाँहें चितकबरी के गले में डाल दीं और रोते-रोते बोली—"मेरी चितकबरी, प्यारी चितकबरी, वे तुम्हें मारने की तैयारी कर रहे हैं।"

गाय ने जवाब दिया—"दुःखी मत हो, मेरी प्यारी गुड़िया! जैसा मैं कहती हूँ, तुम वैसा ही करो। तुम मेरा मांस मत खाना, मेरी हड्डियाँ लेकर रूमाल में बाँध लेना और उन्हें बगीचे में दबाकर हर रोज पानी से सींचना। मुझे कभी भूलना मत।"

उस नन्ही-सी जान ने चितकबरी की बात अपने दिमाग में अच्छी तरह बिठा ली।

जब घर के मालिक ने गाय को मार डाला तो, खव्रोशेच्का ने वैसा ही किया जैसा गाय ने उसे करने के लिए कहा था। वह भूखी रही, मगर उसने मांस नहीं छुआ। उसने हड्डियाँ बगीचे में दाब दीं और उन्हें नियम से सींचने लगी।

कुछ समय बाद उन हड्डियों में से सेब का एक पेड़ उग आया। वह एक अद्‌भुत पेड़ था। उसके सेब गोल और रसदार थे। उसकी झुकी हुई टहनियाँ चाँदी की और सरसराते हुए पत्ते सोने के थे। जो कोई उधर से गुजरता, उस पेड़ को देखने के लिए रुक जाता और आँखें फाड़-फाड़कर घण्टों उसे देखता रह जाता।

इसी तरह काफी वक्त गुजर गया। एक दिन मालिकिन की तीनों

जवान बेटियाँ बाहर बगीचे में घूम रही थीं। तभी एक युवक घुड़सवार उधर आ निकला। उसके बाल सुन्दर और घुँघराले थे, वह बलवान और अमीर था। तीनों लड़कियाँ उस युवक पर मुग्ध हो गईं। तीनों ने बारी-बारी से युवक से विवाह करने की इच्छा जाहिर की। तब युवक एक शर्त रखते हुए बोला—"रूपसियो! मैं उसी से शादी करूँगा जो मुझे सबसे पहले उस पेड़ का सेब लाकर देगी।"

वे तीनों बहनें तेजी से सेब के पेड़ की ओर दौड़ीं। हरेक दूसरी से बाजी मारने की कोशिश कर रही थी।

लेकिन वे सेब जो बहुत नीचे लटके नजर आ रहे थे और लगता था कि आसानी से तोड़े जा सकते हैं, उन लड़कियों के निकट पहुँचते ही अचानक ऊँचे उठ गए और उन तीनों के सिरों के ऊपर लटकते दिखाई देने लगे।

बहनों ने सेब तोड़ने की बहुत कोशिश की मगर असफल रहीं। यहाँ तक कि उन्होंने पेड़ पर चढ़ना चाहा, मगर शाखाएँ उनकी चोटियों से उलझ गईं नीचे आ गिरीं और हाथ-पैर तुड़वा बैठीं। उनकी दुर्दशा देख नवयुवक हँस पड़ा और बोला—"तुम लोग एक फल नहीं हासिल कर पाईं तो मुझे कैसे हासिल कर सकती हो?"

तब खव्रोशेच्का पेड़ के पास गई। उसके जाते ही शाखाएँ झुक गईं और सेब उसके हाथ में आ गए। उसने उस धनी और सुन्दर युवक को एक सेब दे दिया। तीनों लड़कियाँ पेड़ का यह व्यवहार देख मन-ही-मन जल-भुन गईं।

अपने वचनानुसार युवक खव्रोशेच्का से शादी कर उसे अपने साथ ले गया। इस तरह खव्रोशेच्का को न केवल उस दुष्ट परिवार के हाथों से मुक्ति मिल गई, बल्कि उसके जीवन के सारे कष्ट मिट गए और उसने सदा सुखी जीवन बिताया।

नन्हा मेमना

एक समय की बात है, अल्योनुश्का नाम की एक अनाथ लड़की अपने छोटे भाई इवानुश्का को लेकर काम की तलाश में जा रही थी। वह बहुत दूर खेतों के पार निकल आई थी। तभी उसके भाई इवानुश्का को प्यास लगी।

"प्यारी बहन अल्योनुश्का, मुझे प्यास लगी है," उसने कहा।

'सब्र करो, प्यारे भाई, हम जल्द ही किसी कुएँ के पास पहुँच जाएँगे।" बहन ने भाई को दिलासा दी।

चलते-चलते सूरज सिर पर आ गया। धूप परेशान करने लगी, पसीना बहने लगा, मगर कुआँ कहीं नजर नहीं आया। अचानक उन्हें पानी से भरा हुआ गाय के खुर का एक निशान दिखाई दिया।

"प्यारी बहन अल्योनुश्का! मैं यहाँ से पानी पी लूँ?"

"नहीं प्यारे भाई, यह पानी पीकर तू बछड़ा बन जाएगा।"

नन्हें इवानुश्का ने बहन की बात मान ली और वे थोड़ी दूर और आगे बढ़ गए।

चलते-चलते सूरज की गर्मी और तेज हो गई। गर्मी के मारे दोनों का बुरा हाल था। अब तो बहन को भी प्यास लगने लगी थी। प्यास के मारे उनके गले सूखने लगे थे। मगर कुआँ कहीं नजर नहीं आ रहा था! तभी वे पानी से भरे हुए घोड़े के खुर के निशान के पास से गुजरे।

"प्यारी बहन अल्योनुश्का, क्या मैं यहाँ से पानी पी लूँ?"

"नहीं, प्यारे भाई, तू बछेड़ा बन जाएगा।"

इवानुश्का ने आह भरी और वे आगे चल दिए।

चलते-चलते वे काफी दूर निकल गए। थकान और प्यास के मारे अब तो एक कदम भी चल पाना मुश्किल हो रहा था। मगर कुआँ नजर नहीं आया। तभी इवानुश्का की नजर पानी से भरे बकरी के खुर के निशान पर पड़ी।

"प्यारी बहन अल्योनुश्का, मैं प्यास से मरा जा रहा हूँ। यहाँ से पानी पी लूँ?" इवानुश्का ने पूछा।

"नहीं, भाई, तू मेमना बन जाएगा।" अल्योनुश्का ने मना किया।

मगर इस बार इवानुश्का ने अपनी बहन की बात न मानी और दौड़कर वहाँ से पानी पी गया। पानी पीते ही वह मेमना बन गया।

अल्योनुश्का ने अपने भाई को पुकारा तो इवानुश्का की जगह एक मेमना दौड़ता हुआ उसके पीछे आया। अल्योनुश्का फूट-फूटकर रोने लगी। वह सूखी घास के पास बैठी सुबक रही थी और मेमना उसके इर्द-गिर्द फुदकता फिर रहा था।

तभी अचानक घोड़े पर सवार एक सौदागर वहाँ से गुजरा।

"तुम किसलिए रो रही हो, सुन्दरी?" उसने पूछा।

अल्योनुश्का ने उसे अपनी आपबीती सुना दी। सौदागर ने कहा—"सुन्दरी, मुझसे शादी कर लो। मैं तुम्हें सोने-चाँदी से लाद दूँगा और यह मेमना भी हमारे साथ रहेगा।"

अल्योनुश्का कुछ देर तक विचार करने के बाद सौदागर से शादी करने के लिए राजी हो गई। सौदागर ने अल्योनुश्का से शादी कर ली और उसे व

नन्हा मेमना

एक समय की बात है, अल्योनुश्का नाम की एक अनाथ लड़की अपने छोटे भाई इवानुश्का को लेकर काम की तलाश में जा रही थी। वह बहुत दूर खेतों के पार निकल आई थी। तभी उसके भाई इवानुश्का को प्यास लगी।

''प्यारी बहन अल्योनुश्का, मुझे प्यास लगी है,'' उसने कहा।

'सब्र करो, प्यारे भाई, हम जल्द ही किसी कुएँ के पास पहुँच जाएँगे।'' बहन ने भाई को दिलासा दी।

चलते-चलते सूरज सिर पर आ गया। धूप परेशान करने लगी, पसीना बहने लगा, मगर कुआँ कहीं नजर नहीं आया। अचानक उन्हें पानी से भरा हुआ गाय के खुर का एक निशान दिखाई दिया।

''प्यारी बहन अल्योनुश्का! मैं यहाँ से पानी पी लूँ?''

''नहीं प्यारे भाई, यह पानी पीकर तू बछड़ा बन जाएगा।''

नन्हें इवानुश्का ने बहन की बात मान ली और वे थोड़ी दूर और आगे बढ़ गए।

चलते-चलते सूरज की गर्मी और तेज हो गई। गर्मी के मारे दोनों का बुरा हाल था। अब तो बहन को भी प्यास लगने लगी थी। प्यास के मारे उनके गले सूखने लगे थे। मगर कुआँ कहीं नजर नहीं आ रहा था! तभी वे पानी से भरे हुए घोड़े के खुर के निशान के पास से गुजरे।

''प्यारी बहन अल्योनुश्का, क्या मैं यहाँ से पानी पी लूँ?''

''नहीं, प्यारे भाई, तू बछेड़ा बन जाएगा।''

इवानुश्का ने आह भरी और वे आगे चल दिए।

चलते-चलते वे काफी दूर निकल गए। थकान और प्यास के मारे अब तो एक कदम भी चल पाना मुश्किल हो रहा था। मगर कुआँ नजर नहीं आया। तभी इवानुश्का की नजर पानी से भरे बकरी के खुर के निशान पर पड़ी।

''प्यारी बहन अल्योनुश्का, मैं प्यास से मरा जा रहा हूँ। यहाँ से पानी पी लूँ?'' इवानुश्का ने पूछा।

''नहीं, भाई, तू मेमना बन जाएगा।'' अल्योनुश्का ने मना किया।

मगर इस बार इवानुश्का ने अपनी बहन की बात न मानी और दौड़कर वहाँ से पानी पी गया। पानी पीते ही वह मेमना बन गया।

अल्योनुश्का ने अपने भाई को पुकारा तो इवानुश्का की जगह एक मेमना दौड़ता हुआ उसके पीछे आया। अल्योनुश्का फूट-फूटकर रोने लगी। वह सूखी घास के पास बैठी सुबक रही थी और मेमना उसके इर्द-गिर्द फुदकता फिर रहा था।

तभी अचानक घोड़े पर सवार एक सौदागर वहाँ से गुजरा।

''तुम किसलिए रो रही हो, सुन्दरी?'' उसने पूछा।

अल्योनुश्का ने उसे अपनी आपबीती सुना दी। सौदागर ने कहा—''सुन्दरी, मुझसे शादी कर लो। मैं तुम्हें सोने-चाँदी से लाद दूँगा और यह मेमना भी हमारे साथ रहेगा।''

अल्योनुश्का कुछ देर तक विचार करने के बाद सौदागर से शादी करने के लिए राजी हो गई। सौदागर ने अल्योनुश्का से शादी कर ली और उसे व

नन्हा मेमना

एक समय की बात है, अल्योनुश्का नाम की एक अनाथ लड़की अपने छोटे भाई इवानुश्का को लेकर काम की तलाश में जा रही थी। वह बहुत दूर खेतों के पार निकल आई थी। तभी उसके भाई इवानुश्का को प्यास लगी।

''प्यारी बहन अल्योनुश्का, मुझे प्यास लगी है,'' उसने कहा।

'सब्र करो, प्यारे भाई, हम जल्द ही किसी कुएँ के पास पहुँच जाएँगे।'' बहन ने भाई को दिलासा दी।

चलते-चलते सूरज सिर पर आ गया। धूप परेशान करने लगी, पसीना बहने लगा, मगर कुआँ कहीं नजर नहीं आया। अचानक उन्हें पानी से भरा हुआ गाय के खुर का एक निशान दिखाई दिया।

''प्यारी बहन अल्योनुश्का! मैं यहाँ से पानी पी लूँ?''

''नहीं प्यारे भाई, यह पानी पीकर तू बछड़ा बन जाएगा।''

नन्हें इवानुश्का ने बहन की बात मान ली और वे थोड़ी दूर और आगे बढ़ गए।

चलते-चलते सूरज की गर्मी और तेज हो गई। गर्मी के मारे दोनों का बुरा हाल था। अब तो बहन को भी प्यास लगने लगी थी। प्यास के मारे उनके गले सूखने लगे थे। मगर कुआँ कहीं नजर नहीं आ रहा था! तभी वे पानी से भरे हुए घोड़े के खुर के निशान के पास से गुजरे।

''प्यारी बहन अल्योनुश्का, क्या मैं यहाँ से पानी पी लूँ?''

''नहीं, प्यारे भाई, तू बछेड़ा बन जाएगा।''

इवानुश्का ने आह भरी और वे आगे चल दिए।

चलते-चलते वे काफी दूर निकल गए। थकान और प्यास के मारे अब तो एक कदम भी चल पाना मुश्किल हो रहा था। मगर कुआँ नजर नहीं आया। तभी इवानुश्का की नजर पानी से भरे बकरी के खुर के निशान पर पड़ी।

''प्यारी बहन अल्योनुश्का, मैं प्यास से मरा जा रहा हूँ। यहाँ से पानी पी लूँ?'' इवानुश्का ने पूछा।

''नहीं, भाई, तू मेमना बन जाएगा।'' अल्योनुश्का ने मना किया।

मगर इस बार इवानुश्का ने अपनी बहन की बात न मानी और दौड़कर वहाँ से पानी पी गया। पानी पीते ही वह मेमना बन गया।

अल्योनुश्का ने अपने भाई को पुकारा तो इवानुश्का की जगह एक मेमना दौड़ता हुआ उसके पीछे आया। अल्योनुश्का फूट-फूटकर रोने लगी। वह सूखी घास के पास बैठी सुबक रही थी और मेमना उसके इर्द-गिर्द फुदकता फिर रहा था।

तभी अचानक घोड़े पर सवार एक सौदागर वहाँ से गुजरा।

''तुम किसलिए रो रही हो, सुन्दरी?'' उसने पूछा।

अल्योनुश्का ने उसे अपनी आपबीती सुना दी। सौदागर ने कहा—''सुन्दरी, मुझसे शादी कर लो। मैं तुम्हें सोने-चाँदी से लाद दूँगा और यह मेमना भी हमारे साथ रहेगा।''

अल्योनुश्का कुछ देर तक विचार करने के बाद सौदागर से शादी करने के लिए राजी हो गई। सौदागर ने अल्योनुश्का से शादी कर ली और उसे व

उसके भाई मेमने को अपने साथ ले गया। दोनों सुख से रहने लगे। मेमना भी उनके साथ रहता था। वह अल्योनुश्का के साथ एक ही थाली में खाता-पीता था। एक दिन सौदागर घर से बाहर गया हुआ था।

अचानक ही कहीं से एक राक्षसी वहाँ आ पहुँची। वह अल्योनुश्का को उसके पारिवारिक सुख की खातिर नदी में स्नान करने के लिए उकसाने लगी।

अल्योनुश्का राजी हो गई ओर राक्षसी के पीछे-पीछे नदी की ओर चल पड़ी। वहाँ पहुँचने पर राक्षसी ने उसे दबोच लिया। उसने, उसकी गर्दन के गिर्द एक भारी पत्थर बाँधकर, उसे नदी में डुबो दिया।

फिर राक्षसी ने अल्योनुश्का का रूप धारण किया और उसके कपड़े पहने तत्पश्चात् वह उसके घर जा पहुँची। कोई भी यह नहीं जान पाया कि वह राक्षसी है। यहाँ तक कि घर लौटने पर सौदागर भी उसे पहचान न सका।

केवल मेमना जानता था कि क्या घटना घटी है, पर वह सौदागर को कुछ बता नहीं सकता था। क्योंकि राक्षसी हर समय सौदागर के आस-पास रहती थी। वह मुँह लटकाए उदास-सा इधर-उधर घूमता रहता। उसने खाना-पीना तक छोड़ दिया था। सुबह-शाम वह नदी-तट पर जाता और यह गाना गाता—

"खड़ा हुआ है नदी-किनारे, दीदी, भैया तुम्हें पुकारे।
निकल नदी से बाहर आओ, बहन अल्योनुश्का, बाहर आओ।"

एक दिन राक्षसी को इस बात का पता चल गया। वह समझ गई कि वह मेमना उसके लिए मुसीबत खड़ी कर सकता है। अतः वह मेमने को मार डालने के लिए अपने पति पर दबाव डालने लगी।

उसके मुँह से मेमने को मार डालने की बात सुनकर सौदागर को बेहद हैरानी हुई। वह भी उसे बेहद चाहने लगा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि जो अल्योनुश्का उस मेमने से इतना प्यार करती थी, वही उसे क्यों मार देना चाहती है। उधर अल्योनुश्का बनी राक्षसी मेमने को मारने के लिए सौदागर की लगातार मिन्नतें करती रही थी। अन्त में वह उसकी बात मानने के लिए मजबूर हो गया।

"अच्छा तो मार डालो, एक दिन परेशान होकर उसने इजाजत दे ही

दी।"

राक्षसी ने आग जलाकर बड़े-बड़े पतीले गर्म करने और छुरियाँ तेज करने का आदेश दे दिया।

मेमने ने समझ लिया कि उसका आखिरी वक्त करीब आ गया है। जब सौदागर ने आखिरी बार उसे पुचकारते हुए कहा—"प्यारे मेमने! मुझे बड़ा दुःख है। तुम्हारी दीदी तुम्हारी जान की दुश्मन बन गई है।"

मेमने ने अपने पिता-तुल्य सौदागर से कहा—"मरने से पहले मुझे एक बार नदी पर हो आने की इजाजत दे दें। मैं अन्तिम बार नदी का पानी पीना चाहता हूँ।"

"ठीक है जाओ," सौदागर ने कहा।

मेमना नदी की तरफ दौड़ा। वह नदी-तट पर खड़ा होकर दर्द भरी आवाज में पुकार-पुकारकर कहने लगा—

"दीदी अल्योनुश्का, प्यारी अल्योनुश्का, बाहर आओ, बाहर आओ।
तैर नदी से बाहर आओ, आग जलाई उन लोगों ने,
कर लीं छुरियाँ तेज, कड़ाहे उबल रहे हैं,
ले लेने को प्राण मेरे, जानी दुश्मन मचल रहे हैं।"

नदी में से अल्योनुश्का ने जवाब दिया—

"भाई इवानुश्का, प्यारे इवानुश्का,
कैसे बाहर आऊँ मैं, कैसे बाहर आऊँ मैं।
गर्दन से मेरे बँधा हआ है पत्थर भारी,
नर्म दूब में उलझ रही, सारी की सारी।
बाधा पीली रेत की, मैं संकट की मारी।"

उधर, राक्षसी मेमने को खोज रही थी। परन्तु उसे कहीं न पा सकी। तब उसने एक नौकर बुलवाया और उससे कहा—"जाओ, जाकर नदी के आसपास मेमने को खोजो और उसे मेरे पास लाओ।"

नौकर नदी पर गया और वहाँ उसने मेमने को तट पर इधर-उधर दौड़ते हुए दर्द भरी आवाज में यह कहते सुना—

"दीदी अल्योनुश्का, प्यारी अल्योनुश्का, बाहर आओ, बाहर आओ।
तैर नदी से बाहर आओ, आग जलाई उन लोगों ने,
कर लीं छुरियाँ तेज, कड़ाहे उबल रहे हैं,

ले लेने को प्राण मेरे, जानी दुश्मन मचल रहे हैं।''

फिर नदी में से अल्योनुश्का की आवाज सुनाई दी–

''भाइ इवानुश्का, प्यारे इवानुश्का,
कैसे बाहर आऊँ मैं, कैसे बाहर आऊँ मैं।
गर्दन से मेरे बँधा हुआ है पत्थर भारी,
नर्म दूब में उलझ रही, सारी की सारी।
बाधा पीली रेत की, मैं संकट की मारी।''

नौकर दौड़ता हुआ घर पहुँचा। नदी-तट पर उसने जो कुछ देखा-सुना था, वह अपने मालिक को कह सुनाया।

सौदागर ने जब यह सुना तो कुछ लोगों को साथ लेकर नदी-तट पर पहुँचा। उन्होंने नदी में एक रेशमी जाल डाला और अल्योनुश्का को खींचकर बाहर निकाल लिया और उसकी गर्दन के गिर्द बँधा हुआ पत्थर खोला। फिर उसे नदी के जल में स्नान करवाकर सुन्दर वस्त्र पहनाए और घर की ओर चल दिए।

अल्योनुश्का अब पहले से भी ज्यादा सुन्दर दिख रही थी। मेमना दुम हिलाता हुआ उनके पीछे चल रहा था।

मार्ग में अल्योनुश्का ने सारी बात सौदागर को बता दी। घर पहुँचते ही सौदागर ने राक्षसी को बंधवाकर गर्म तेल के पतीले में डलवा दिया।

''हाय मर गई। बचाओ-बचाओ।'' राक्षसी चीख-चीखकर जिन्दगी की भीख माँगने लगी। परन्तु सौदागर को उस पर जरा भी दया नहीं आई।

राक्षसी जल-भुनकर मर गई। राक्षसी का अन्त होते देख मेमना खुशी से फूला न समाया। वह नाचने-कूदने लगा। अचानक उसने कलाबाजी खाई और वह फिर से नन्हा-मुन्ना इवानुश्का बन गया।

अपने भाई को वापस पा अल्योनुश्का की खुशी की सीमा न रही। उसने इवानुश्का को बाँहों में भर सीने से लगा लिया। सौदागर भी बहुत खुश हुआ।

तत्पश्चात् वे खुशी-खुशी जीवन बिताने लगे। इसीलिए कहते हैं कि ईश्वर जो कुछ करता है, अच्छा ही करता है। यदि इवानुश्का मेमना न बनता तो राक्षसी उसे भी समुद्र में डुबोकर मार डालती और इस प्रकार दोनों की जीवन लीला समाप्त हो जाती।

मूर्ख येमेला

एक समय की बात है, एक शहर में एक बूढ़ा आदमी और उसके तीन जवान बेटे रहते थे। उनमें से दो होशियार थे और तीसरा, जिसका नाम येमेला था, बेवकूफ था। दोनों बड़े भाई सदा काम में लगे रहते थे, जबकि येमेला दिनभर अलावघर में पड़ा रहता था। उसे किसी भी बात की फिक्र नहीं होती थी।

एक दिन उसके दोनों भाई बाजार गए हुए थे। उनकी बीवियों ने येमेला से कहा–''येमेला! थोड़ा पानी ले आओ।''

येमेला ने अलावघर से लेटे-लेटे ही जवाब दिया–''मैं नहीं जाऊँगा।''

"जाओ येमेला, वरना तुम्हारे भाई तुम्हारे लिए बाजार से कोई उपहार नहीं लाएँगे।"

"अच्छा, जाता हूँ।"

तब येमेला अलावघर से नीचे उतरा। उसने जूते पहने, कफ्तान बदन पर डाला और दो डोल व एक कुल्हाड़ी हाथ में लेकर नदी की ओर चल दिया।

नदी पर बर्फ जमी हुई थी। येमेला ने अपनी कुल्हाड़ी से उसमें एक बड़ा सुराख बनाया और पानी के दोनों डोल भर लिए। फिर वह डोलों को बर्फ पर रख झुककर सुराख में झाँकने लगा। तभी उसने एक श्चूका मछली को पानी में तैरते देखा। उसने झट से अपनी बाँह पानी में डाल दी दूसरे ही पल श्चूका उसके हाथ में थी।

"आज तो मछली के शोरबे का मजा आ जाएगा," येमेला ने खुश होकर अपने आपसे कहा।

तभी श्चूका मनुष्य की आवाज में बोल उठी—"मुझे छोड़ दो येमेला।"

येमेला दंग रह गया।

श्चूका ने फिर कहा—"मुझे छोड़ दो येमेला, मैं किसी रोज तुम्हारे काम आऊँगी।"

लेकिन येमेला ने उसकी बात हँसी में उड़ा दी—"तुम भला मेरे किस काम आओगी? नहीं, मैं तुम्हें अपने घर ले जाऊँगा और अपनी भाभियों से कहूँगा कि वे मेरे लिए मजेदार शोरबा बना दें। तुम्हारा शोरबा खूब मजेदार बनेगा।"

लेकिन श्चूका ने गिड़गिड़ाकर कहा—"मुझे छोड़ दो, येमेला। मैं तुम्हारी हर इच्छा पूरी कर दूँगी।"

"अच्छा।" येमेला ने चौंककर कहा—"फिर तो तुम्हें पहले यह साबित करना होगा कि तुम मुझे धोखा तो नहीं दे रही हो।"

श्चूका बोली—"अच्छा बताओ, तुम्हें अभी क्या चाहिए?"

"मैं यह चाहता हूँ कि मेरे डोल अपने आप घर पहुँच जाएँ और रास्ते में एक बूँद पानी भी न गिरने पाए।"

"ऐसा ही हो जाएगा, येमेला।" श्चूका ने कहा—"जब कभी तुम्हें किसी चीज की इच्छा हो, बस यह कह देना—'हुक्म श्चूका का, इच्छा मेरी!' और फौरन वैसा ही हो जाएगा।"

येमेला झट से बोला—"हुक्म श्चूका का, इच्छा मेरी! डोल अपने आप घर पहुँच जाएँ।"

येमेला का इतना कहना था कि दोनों डोल पहाड़ी पर चढ़ने लगे। येमेला की खुशी का ठिकाना न रहा। येमेला ने श्चूका को फिर से पानी में छोड़ दिया और खुद डोलों के पीछे-पीछे चल रहा था। डोल चलते-चलते सीधे येमेला के मकान में घुस गए और कूदकर बेंच पर जा टिके।

येमेला फिर से अलावघर पर चढ़कर लेट गया।

थोड़े दिनों बाद येमेला की भाभियों ने उससे फिर कहा—"वहाँ क्यों पड़े हो, येमेला? नीचे उतरकर हमारे लिए थोड़ी-सी लकड़ी चीर दो!"

"मैं यह काम नहीं करूँगा।"

"अगर तुम हमारा कहना नहीं मानोगे तो तुम्हारे भाई तुम्हारे लिए बाजार से कुछ नहीं लाएँगे।"

येमेला अलावघर से उतरना नहीं चाहता था। तभी उसे श्चूका की बात याद आई। वह धीरे-से बुदबुदाया—'हुक्म श्चूका का, इच्छा मेरी! चल री कुल्हाड़ी, उठ और जाकर कुछ लकड़ी चीर दे। लकड़ियो! घर के अन्दर चली आओ और कूदकर अलावघर में बैठ जाओ!'

अगले ही पल उसने देखा कि कुल्हाड़ी बेंच से नीचे कूदी और आँगन में जाकर लकड़ी चीरने लगी। चिरी हुई लकड़ियाँ अपने आप मकान के अन्दर आईं और कूदकर अलावघर में बैठ गईं।

इस तरह कुछ समय बीता। फिर येमेला की भाभियों ने उससे कहा—"लकड़ियाँ खत्म हो गई हैं, येमेला। जाओ, जंगल से कुछ लकड़ी काट लाओ!"

येमेला ने अलावघर पर पड़े-पड़े अंगड़ाई लेते हुए जवाब दिया—"तुम लोग किस मर्ज की दवा हो?"

"कैसी बात करते हो, येमेला।" औरतों ने कहा—"जंगल में जाकर लकड़ी काटना तो हम लोगों का काम नहीं है।"

"लेकिन मैं भी ऐसा करने को तैयार नहीं हूँ," येमेला बोला।

"अच्छा, तो फिर तुम्हें कोई तोहफा नहीं मिलेगा," उसकी भाभियों ने कहा।

अब येमेला क्या करता? वह अलावघर से नीचे उतरा। उसने जूते पहने। कफ्तान बदन पर डाला और रस्सी कुल्हाड़ी लेकर आँगन में पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर वह स्लेज-गाड़ी पर सवार हुआ और फिर चिल्लाकर बोला—"भाभियो! फाटक खोलो!"

उसकी भाभियाँ उस पर हँसकर बोलीं—"मूर्ख कहीं के! स्लेज-गाड़ी में बैठे क्या कर रहे हो? उसमें अभी तुमने घोड़े तो जोते ही नहीं।"

"मुझे घोड़े नहीं चाहिए।"

"ओह! तो गाड़ी खुद खींचने का इरादा है," इतना कह उसकी भाभियों ने फाटक खोल दिया।

तब येमेला ने धीरे-से कहा—"हुक्म श्चूका का, इच्छा मेरी। चल री स्लेज-गाड़ी, जंगल की तरफ।'

स्लेज-गाड़ी सचमुच ऐसे सनसनाती हुई फाटक के बाहर निकलकर दौड़ चली कि कोई घुड़सवार भी उसका पीछा नहीं कर सकता था। भाभियाँ स्तब्ध-सी खड़ी उसे जाते हुए देख रही थीं।

जंगल की सड़क शहर में से होकर गुजरती थी। स्लेज-गाड़ी ने रास्ते में बहुत से लोगों को गिरा दिया और कइयों को कुचल दिया। इस पर शहर के लोग चिल्लाए—"पकड़ो उसे, रोको उसे!"

लेकिन येमेला ने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। वह तो स्लेज-गाड़ी से और तेज चलने के लिए ही कहता रहा। जंगल में पहुँचकर उसने स्लेज-गाड़ी को रोक दिया और बोला—'हुक्म श्चूका का, इच्छा मेरी। चल री कुल्हाड़ी उठ और कुछ सूखी लकड़ी काट दे। लकड़ियों के गट्ठो, तुम स्लेज-गाड़ी में चढ़ जाओ और अपने चारों ओर रस्सी लपेट लो।'

कुल्हाड़ी सूखी लकड़ियाँ काटने और चीरने लगी। लकड़ियों के गट्ठे एक-एक करके स्लेज-गाड़ी में चढ़ते और रस्सी में बँध जाते। जब काम पूरा हो गया तो येमेला ने कुल्हाड़ी को हुक्म दिया कि वह उसके लिए एक इतना भारी सोटा बना दे जिसे उठाना भी मुश्किल हो। सोटा तैयार होकर स्लेज-गाड़ी पर सवार हो गया। इन सबके बाद येमेला स्लेज पर सवार हुआ और बोला—'हुक्म श्चूका का, इच्छा मेरी। चल री स्लेज-गाड़ी, घर की तरफ।'

स्लेज-गाड़ी तेज रफ्तार के साथ घर की ओर चल पड़ी। येमेला फिर

उसी शहर के बीच से गुजरा जहाँ उसने आते समय बहुत से आदमियों को अपनी गाड़ी के नीचे कुचल दिया था। वहाँ लोगों की भीड़ उसका इन्तजार कर रही थी। उसके आते ही शहर के लोगों ने येमेला को पकड़ लिया और लगे उसे गालियाँ देने व पीटने।

यह देखकर कि अब उसकी खैर नहीं है, येमेला ने धीरे से कहा—'हुक्म श्चूका का, इच्छा मेरी। चल रे सोटे, इन लोगों को धुन।'

येमेला का इतना कहना था कि सोटा गाड़ी से बाहर निकला और लगा उन लोगों को पीटने।

सोटे की पिटाई से घबराकर शहर के लोगों ने येमेला को छोड़ दिया और भाग खड़े हुए। तब येमेला घर लौट आया और फिर अलावघर पर चढ़कर लेट गया।

इस तरह कुछ समय और बीता। जार को भी येमेला की करतूतों की खबर मिल चुकी थी। उसने अपने एक अफसर को येमेला का पता लगाकर उसे महल में पकड़ लाने के लिए भेजा। अफसर येमेला के गाँव पहुँचा और उसके मकान का पता लगाकर उसमें दाखिल होकर बोला—"तू ही है मूर्ख येमेला?"

येमेला ने अलावघर में लेटे-लेटे ही जवाब दिया—"हूँ, तो क्या है?"

"जल्दी से कपड़े पहनकर तैयार हो जा। मैं तुझे जार के पास लिवाने के लिए आया हूँ।"

"मैं नहीं जाऊँगा!" येमेला ने जवाब दिया।

अफसर को येमेला का जवाब सुनकर बहुत गुस्सा आया। उसने येमेला को एक चाँटा मार दिया। तब येमेला ने धीरे-से कहा—'हुक्म श्चूका का, इच्छा मेरी! निकल रे सोटे, जरा धुन इसको!'

सोटा निकलकर अफसर को पीटने लगा। उसने उसे इतना पीटा, इतना पीटा कि अफसर का दम निकलते-निकलते बचा। वह सिर पर पैर रखकर वहाँ से ऐसा भागा कि जार की चौखट पर पहुँचकर ही रुका।

जार को यह जानकर बड़ा ताज्जुब हुआ कि येमेला उसके अफसर के काबू में नहीं आया। तब उसने अपना बड़ा सिपहसालार येमेला को पकड़ लाने के लिए भेजा।

सिपहसालार ने बहुत-सी किशमिश, आलूबुखारे व सूखे केक खरीदे

और येमेला के गाँव जा पहुँचा। वह उस मकान में दाखिल हुआ जिसमें येमेला रहता था। उसने येमेला की भाभियों से पूछा कि येमेला को सबसे ज्यादा क्या पसन्द है।

"येमेला को सबसे ज्यादा यह पसन्द है कि लोग उससे मीठे बोलें।" उन्होंने बताया—"तुम अगर उससे सलीके से बात करोगे और एक लाल कफ्तान तोहफे के तौर पर देने का वायदा करोगे तो वह कुछ भी करने को तैयार हो जाएगा।"

तब सिपहसालार ने सारी किशमिश, आलूबुखारे केक, जो वह अपने साथ लाया था, येमेला को उपहार स्वरूप दे दिया और उससे बोला—"भाई येमेला, यहाँ अलावघर पर क्यों पड़े हो? मेरे साथ जार के महल में चलो!"

"मैं जहाँ हूँ, वहीं आराम से हूँ," येमेला ने जवाब दिया।

"अरे येमेला, जार तुम्हें मिठाइयाँ खिलाएगा और शराब पिलाएगा। चलो, जार के महल में चलें।"

"मैं नहीं जाऊँगा।"

"येमेला, जार तुम्हें एक सुन्दर लाल कफ्तान, टोपी और जूतों का एक जोड़ा भी तोहफे के तौर पर देगा।"

येमेला ने कुछ देर तक सोचा, फिर बोला—"ठीक है, तुम जाओ। मैं तुम्हारे पीछे-पीछे आता हूँ।"

सिपहसालार अपने घोड़े पर सवार होकर चला गया। येमेला कुछ देर और अलावघर में लेटा रहा, फिर बुदबुदाया—'हुक्म श्चूका का, इच्छा मेरी! चल रे अलावघर जार के महल की तरफ!'

दूसरे ही पल मकान के चारों छोर बुरी तरह काँपने लगे, छत हिलने लगी, एक दीवार भरभरा कर नीचे गिर पड़ी और अलावघर खुद-ब-खुद बाहर निकलकर सड़क पर चलने लगा।

वह सीधे जार के महल की तरफ बढ़ा चला जा रहा था।

जार ने खिड़की से अलावघर को महल की तरफ आते देखा तो अचरज में डूब गया।

"यह कौन है?" उसने पूछा।

सिपहसालार ने जवाब दिया—"यही येमेला है हुजूर।"

जार अपने महल के छज्जे पर आया और बोला—"येमेला, मेरे पास

तुम्हारी बहुत शिकायतें आई हैं। मालूम हुआ है कि तुमने बहुत-से लोगों को अपनी गाड़ी के नीचे कुचल दिया है।"

"वे लोग मेरी स्लेजगाड़ी के रास्ते में क्यों आए थे?" येमेला ने जवाब दिया।

ठीक उसी समय जार की बेटी राजकुमारी मारिया ने महल की खिड़की से बाहर झाँका। येमेला की नजर उस पर पड़ गई। उसने धीरे-से कहा—'हुक्म श्चूका का, इच्छा मेरी! जार की बेटी मुझसे प्रेम करने लगे!'

फिर वह जार की परवाह किए बगैर धीरे-से बोला—'चल रे अलावघर, वापस घर को!'

अलावघर मुड़ा और सीधे येमेला के गाँव में पहुँच गया। वह मकान में दाखिल हुआ और अपनी पहले वाली जगह पर जाकर जम गया। येमेला पहले की तरह ही अलावघर पर लेटा रहा।

उधर महल में रोना-धोना और चीख-पुकार मच गई थी। राजकुमारी मारिया येमेला के लिए रो-रोकर आधी हुई जा रही थी। उसने अपने बाप से कह दिया कि वह येमेला के बिना जिन्दा नहीं रह सकती। वह अनुरोध करने लगी कि उसे येमेला से विवाह करने की इजाजत दे दी जाए।

जार बहुत परेशान और दुखी हुआ। उसने अपने सिपहसालार को फिर आदेश दिया—"जाओ और येमेला को जिन्दा या मुर्दा यहाँ पकड़कर लाओ। अगर तुम इस काम को पूरा किए बगैर लौटे तो तुम्हारी गर्दन उड़ा दी जाएगी।"

सिपहसालार ने फिर खाने की बहुत-सी बढ़िया-बढ़िया चीजें और मीठी शराबें खरीदीं। सब सामान लेकर वह येमेला के गाँव के लिए रवाना हो गया। वह उसी मकान में पहुँचा और येमेला को सारी चीजें उपहार में दे दीं।

येमेला ने पेट भरकर बढ़िया खाना खाया और खूब शराब पी। आखिर उसका सिर घूमने लगा और वह पड़कर सो गया। तब सिपहसालार ने सोते हुए येमेला को गाड़ी में डाला और घोड़े पर सवार होकर जार के महल की ओर चल दिया।

सिपहसालार बेहोश येमेला को लेकर जैसे ही महल में पहुँचा, जार ने फौरन एक बहुत बड़ा पीपा लाने का हुक्म दिया।

तुरन्त एक बहुत बड़ा पीपा लाया गया जिसके गिर्द लोहे के घेरे लगे

थे। येमेला और राजकुमारी मारिया को उस पीपे में बन्द करके उसे राल से रंग कर समुद्र में डाल दिया गया।

जब येमेला को होश आया तो उसने अपने चारों तरफ अँधेरा-ही-अँधेरा देखा। उसे यह भी पता चल गया कि वह किसी संकरी-सी चीज में बन्द है।

'मैं कहाँ हूँ?' येमेला बरबस ही बुदबुदा उठा।

राजकुमारी मारिया ने जवाब दिया—"हम लोग किस्मत के मारे हैं येमेला, मेरे प्यारे! उन लोगों ने हमें राल से रंगे एक पीपे में बन्द करके सागर में छोड़ दिया है।"

"तुम कौन हो?" येमेला ने पूछा।

"मैं राजकुमारी मारिया हूँ," जवाब मिला।

तब येमेला ने कहा—"हुक्म श्चूका का, इच्छा मेरी! चलो री तेज हवाओ, इस पीपे को सूखी जमीन पर पहुँचा दो।"

सचमुच, तभी बड़ी तेज हवाएँ लगीं, समुद्र खौलने लगा, पीपा सूखी जमीन पर पहुँच गया और पीली रेत पर टिक गया। राजकुमारी मारिया और येमेला उसमें से बाहर निकल आए। तब राजकुमारी मारिया ने कहा—"येमेला, मेरे प्यारे! अब हम लोग कहाँ रहेंगे? हम लोगों को अपने लिए एक मकान तो जरूर बनाना चाहिए।"

येमेला ने तुरन्त कहा—"हुक्म श्चूका का, इच्छा मेरी! फौरन पत्थरों का एक महल बन जाए जिसकी छत सोने की हो!"

उसके मुँह से ये शब्द निकले ही थे कि सोने की छत वाला पत्थरों का एक महल बनकर खड़ा हो गया। उसके चारों ओर हरा-भरा बाग था। बाग में फूल खिले हुए थे और चिड़िया चहचहा रही थी। राजकुमारी मारिया और येमेला महल में दाखिल हुए और खिड़की के पास जाकर बैठ गए।

राजकुमारी ने कहा—"येमेला मेरे प्यारे! क्या तुम सुन्दर नहीं बन सकते?"

येमेला ने ज्यादा सोच-विचार न किया और फौरन कहा—'हुक्म श्चूका का, इच्छा मेरी! मैं बहुत सुन्दर वीर युवक बन जाऊँ!'

देखते-ही-देखते येमेला एक बहुत सुन्दर युवक बन गया।

कुछ दिनों बाद जार शिकार खेलता हुआ उधर आ निकला। समुद्र-तट पर उसने एक ऐसा शानदार महल खड़ा देखा जैसा पहले कभी नहीं देखा

था।

"यह किस अहमक ने मेरी जमीन पर महल बनाने की जुर्रत की है?" जार ने कहा। फिर अपने दूतों को यह पता लगाने के लिए भेजा कि यह जुर्म किसने किया है।

जार के दूत दौड़ते हुए महल के सामने पहुँचे और खिड़की से नीचे झाँक रहे येमेला को पुकारकर पूछने लगे—"तुम कौन हो?"

"जार से जाकर कहो कि वह खुद यहाँ आए। मैं उसे ही बताऊँगा कि मैं कौन हूँ," येमेला ने जवाब दिया।

येमेला का सन्देश पाकर जार खुद वहाँ पहुँच गया। येमेला ने महल के फाटक पर जार का स्वागत किया और उसे महल के अन्दर ले गया। उसने जार की शाही दावत की। जार खाता जाता, पीता जाता और अचरज से पूछता जाता—"तुम कौन हो, वीर युवक! मुझे अपने बारे में कुछ बताओ।"

आखिरकार येमेला बोला—"क्या आपको उस मूर्ख येमेला की याद है जो एक अलावघर पर चढ़कर आपसे मिलने आया था? क्या आपको याद है कि आपने किस तरह उसे अपनी बेटी राजकुमारी मारिया के साथ राल लगे एक पीपे में बन्द कराके समुद्र में फेंकवा दिया था? मैं वही येमेला हूँ। अगर मैं चाहूँ तो आपकी पूरी बादशाहत में आग लगाकर उसे मटियामेट कर सकता हूँ।"

जार का दम सूख गया। वह येमेला से माफी माँगने लगा और गिड़गिड़ाकर बोला—"मुझ पर दया करो, येमेला। तुम मेरी बेटी से ब्याह कर लो और मेरा राजपाट सब ले लो।"

तब येमेला का राजकुमारी मारिया के साथ विवाह हो गया।

जार ने अपना राजपाट येमेला को सौंप दिया। येमेला ने अपनी शादी के उपलक्ष्य में ऐसी शाही दावत दी कि लोग दंग रह गए।

उसके बाद येमेला ने काफी समय तक राज्य किया। उसके राज्य नें प्रजा सुखी-सम्पन्न रही। जार येमेला ने अपनी पत्नी राजकुमारी मारिया के साथ खुशी-खुशी जीवन व्यतीत किया।
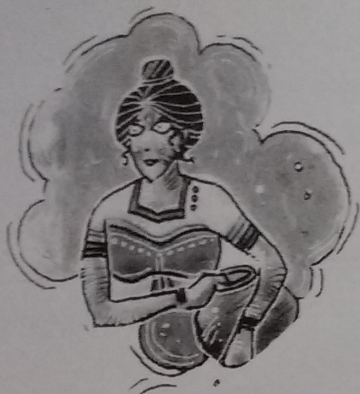
अजगर का अन्त

एक बार कीयेव शहर में कहीं से एक अजगर आ निकला और कर के रूप में हर परिवार से बारी-बारी से एक सुन्दर कुमारी अपने खाने के लिए वसूल करने लगा। इस प्रकार जो भी कुमारी उसके लिए भेजी जाती, अजगर उसे खा जाता।

एक दिन अजगर के यहाँ जाने की जार की बेटी की बारी आई। अजगर जार-पुत्री को पकड़कर अपनी खोह में घसीट ले गया। लेकिन जार-पुत्री इतनी सुन्दर थी कि अजगर ने उसे खाया नहीं। वह उसे अपनी पत्नी बनाना चाहता था। परन्तु जार-पुत्री ने किसी तरह बहाना बनाकर उसे

टाल दिया।

जब कभी अजगर किसी काम से बाहर जाता तो खोह के मुँह को लट्ठों से बन्द कर जाता कि कहीं जार-पुत्री वहाँ से भाग न जाए।

जार-पुत्री का एक छोटा-सा कुत्ता था जो उसके घर छोड़ते वक्त उसके पीछे-पीछे वहाँ तक चला आया था। छोटा-सा कुत्ता अब भी बड़ी वफादारी के साथ जार-पुत्री का काम किया करता था। जार-पुत्री अपने माँ-बाप के नाम खत लिखकर कुत्ते की गर्दन में बाँध देती थी। कुत्ता दौड़ जाता और फौरन खत पहुँचाकर खत का जवाब भी ले आता था। एक दिन जार और जार की पत्नी ने अपनी बेटी को लिखा कि अजगर से ज्यादा ताकतवर दुनिया में कौन है? कौन अजगर का वध कर सकता है? तुरन्त इस बात का पता लगाकर भेजे, ताकि वे उसकी मदद के लिए कुछ कर सकें।"

उस रोज से जार-पुत्री अजगर के साथ ऐसा व्यवहार करने लगी, जैसे वह उसे बहुत चाहने लगी हो। वह उससे बड़े प्यार के साथ बात करती और बड़े ढंग से पेश आती। इस तरह वह अजगर का भेद जान लेना चाहती थी। पहले तो अजगर ने कुछ नहीं बताया, पर आखिर में उसने उसे बता ही दिया कि कीयेव शहर में निकीता नाम का एक खटिक रहता है, जो ताकत में उससे इक्कीस है और उसकी मौत उसी के हाथों लिखी है। जार-पुत्री ने अपने पिता को लिख भेजा कि कीयेव में रहने वाला निकीता खटिक ही अजगर को मार सकता है। उसका पता लगाकर अपनी पुत्री को छुड़ाने के लिए उसे भेजें।

बेटी का सन्देश पाकर जार ने निकीता खटिक का पता लगवाया और खुद सपत्नीक उसके पास जाकर अनुरोध करते हुए बोला—"वीर युवक! शैतान अजगर की मौत तुम्हारे हाथों ही लिखी है। तुम्हें अपनी मातृभूमि को पापी अजगर से मुक्त कराना चाहिए। मेरी पुत्री को उसकी दासता से तुम ही मुक्ति दिला सकते हो। इसके बदले चाहे तुम जितना धन माँग लो, मैं देने को तैयार हूँ।"

जार की बात सुनकर वह गुस्से से काँपने लगा, उसके हाथ थरथराने लगे और उसके हाथ में थमी बारह बैलों की खालें फट गईं। खालों के फट जाने से उसको जो नुकसान हुआ, उससे निकीता को बहुत गुस्सा आया। इसलिए जार और जार की पत्नी के बहुत मिन्नत करने पर भी वह जार-पुत्री

को छुड़ाने के लिए जाने को तैयार नहीं हुआ। उसने जार से कहा–"मैं गरीब जरूर हूँ, पर लोभी नहीं। तुमने धन का लालच देकर मेरा अपमान ही नहीं किया बल्कि मुझे गुस्सा दिलाकर मेरा काफी नुकसान भी कर दिया है। अब जाओ यहाँ से।"

जार और जार की पत्नी मुँह लटकाए वहाँ से लौट आए। वे समझ गए कि निकीता न केवल बहादुर है बल्कि स्वाभिमानी भी है।

अब उन्होंने तय किया कि जिन पाँच हजार नन्हे-नन्हे बच्चों को पापी अजगर ने अनाथ बना दिया था, उन सबको इकट्ठा करके खटिक के पास भेजा जाए और वे उससे देश को उस दानव के अत्याचार से मुक्त कराने का अनुरोध करें।

तब अनाथ बच्चे निकीता के पास गए और आँखों में आँसू भरकर उससे अजगर से लड़ने की प्रार्थना की। निकीता को उन अनाथों के आँसू देखकर दया आ गई। वह तुरन्त राजी हो गया।

निकीता ने तीन सौ मन सन को राल से रंगवाकर अपने बदन के चारों तरफ लपेट लिया ताकि अजगर के दाँतों का उसके शरीर पर कोई असर न हो। फिर वह अजगर से निपटने के लिए चल पड़ा।

निकीता अजगर की खोह पर पहुँचा। लेकिन अजगर खोह का मुँह अन्दर से बन्द करके दुबककर बैठ गया। निकीता खटिक ने उसे ललकारा–"बाहर निकल और खुले मैदान में मुझसे मुकाबला कर, वरना मैं तेरी खोह को भी मिट्टी में मिला दूँगा!"

लेकिन जब अजगर पर उसकी धमकी का कोई प्रभाव नहीं हुआ तो वह तुरन्त ही खोह का दरवाजा तोड़ने के प्रयास में जुट गया।

जब अजगर ने देखा कि इस तरह उसकी जान नहीं बचेगी तो वह खुले मैदान में निकीता का सामना करने के लिए निकल आया।

काफी देर तक उन दोनों के बीच घमासान युद्ध होता रहा। आखिरकार अजगर ने अपनी हार मान ली और जमीन पर गिरकर जान की भीख माँगते हुए बोला–"मुझे मत मारो, निकीता खटिक! दुनिया में तुमसे और मुझसे ज्यादा ताकतवार कोई नहीं है। सो आओ, धरती को बराबर-बराबर के दो हिस्सों में बाँट लें, आधे में तुम रहना और आधे में मैं रहूँगा।"

"अच्छा, यही सही।" खटिक राजी हो गया–"लेकिन बेहतर होगा,

अगर हम पहले ही सीमा रेखा खींच लें।"

तब निकीता ने लकड़ी के डेढ़ सौ मन का भारी हल बनाकर अजगर को उसमें जोता और जमीन पर हल से एक मेड़-सी बनाने लगा। सीमा की रेखा कीयेव से लेकर कस्तूरियन सागर तक खींच दी गई। तत्पश्चात् अजगर बोला–"हम लोगों के बीच जमीन का बँटवारा हो चुका...।"

"हाँ, वह तो हो चुका," निकीता अजगर की बात काटता हुआ बोला–"अब हम लोगों को समुद्र का बँटवारा भी कर लेना चाहिए, वरना तुम बाद में कहोगे कि मैंने तुम्हारा पानी ले लिया है।"

अजगर इसके लिए भी राजी हो गया। निकीता अजगर की पीठ पर सवार होकर समुद्र में चल पड़ा। जब अजगर समुद्र के बीचों-बीच पहुँचा तो निकीता ने अपनी तलवार से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। अजगर मर गया। उसकी लाश को समुद्र में डुबोकर निकीता वापस लौट आया।

इस प्रकार निकीता का पवित्र काम पूरा हो गया। रूस देश को पापी अजगर के अत्याचार से मुक्ति मिल गई।

निकीता फिर अपने घर लौट गया। उसने जो कुछ किया था, उसका कोई इनाम भी उसने नहीं लिया।
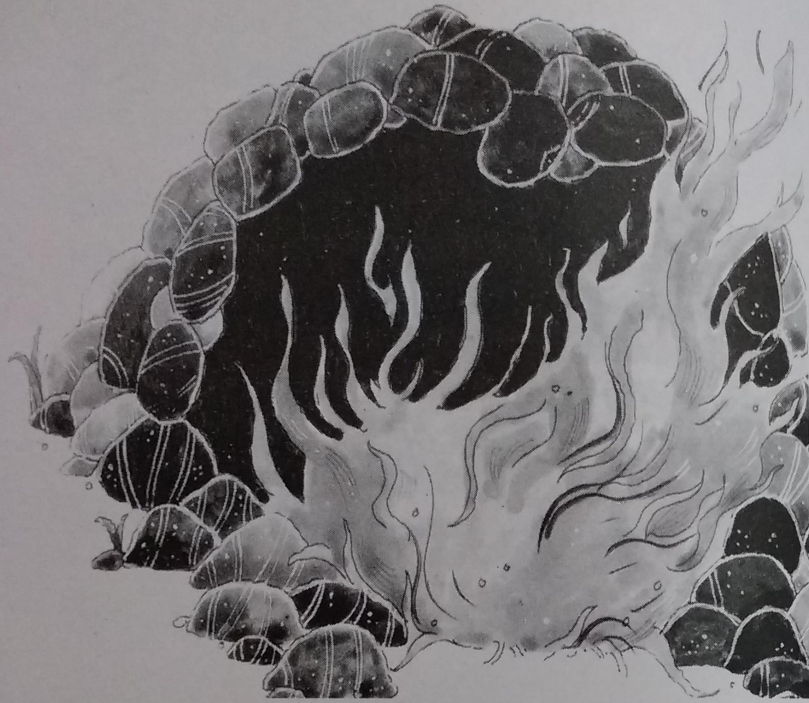
गा, बुलबुल, गा !

"बैटरी, फायर !"

लम्बी दूरी तक मार करने वाली तोपों ने गोलों की बौछार कर दी। तोपों की लम्बी-लम्बी नलियों से आग की लपटें फूट पड़ीं। गूँज उठी गड़गड़ाहट से चट्टानों की नींव हिल गई और जंगल काँप उठा। अभी तोपों की गरज अथाह शून्य में विलीन हुई ही थी कि फिर से आदेश गूँज उठा—"फायर !"

और तोपें एक बार फिर गरज उठीं।

सिगनल बज उठा—"हवाई जहाज आ रहे हैं।"

शीघ्रातिशीघ्र लेकिन बिना किसी हड़बड़ी के तोपची तोपखाने को 100 मीटर दूर गुफा में ले गए।

दुश्मनों के पाँच हवाई जहाजों से बीस बम गिराए गए। विस्फोटों के कारण धरती विदीर्ण-सी होती प्रतीत हुई। आस-पास के सभी वृक्षों को बम धराशायी कर गए थे।

लेकिन इस बार भी दुश्मन कोई प्रत्यक्ष क्षति पहुँचाने में असफल रहे थे। दुश्मन के हवाई जहाज तोपखाने के पड़ाव-स्थल का ऊपर-ही-ऊपर से चक्कर लगाकर भाग गए।

तोपखाना अपने पहले वाले ठिकाने पर लौट आया था। तोपखाने के कमाण्डर अखूमेदोव की आवाज एक बार फिर सुनाई दी—"फायर !"

पिछले दस दिनों से यही स्थिति बनी थी।

तोपखाने की सामरिक सफलताओं से कमाण्डर से लेकर सैनिक तक, सब-के-सब खुश थे। लेकिन तोपखाने का कमाण्डर सार्जेण्ट अस्केर विशेष रूप से हर्षित था। कोलाहलरहित संध्या के समय वह जंगल की ओर मुँह करके आवाज देता था—"गा, मेरी बुलबुल, गा !"

और आश्चर्यजनक बात यह थी कि उसके आह्वान के प्रत्युत्तर में जंगल से किसी बुलबुल का कोमल, सचेत गीत सुनाई देने लगता। अगर कभी बुलबुल उसके आह्वान के प्रत्युत्तर में थोड़ी देर कर देती तो अस्केर स्वयं गाना शुरू कर देता—

ऐ उर-बसी, चयित पंखुड़ियों से
मैं बनाता हूँ गुलाब-जल;
किन्तु बुलबुल को गर कुछ हो गया,
भयानक प्रतिशोध मैं लूँगा...

इस तरह अस्केर हर बार बुलबुल से गाने को कहता और जैसे उसकी बात समझकर बुलबुल हर बार उसके अनुरोध पर गाने लगती थी।

इसमें कोई चमत्कार न था। निस्सन्देह, सार्जेण्ट पक्षियों की भाषा से अनभिज्ञ था, बुलबुल के बसेरे की भी उसे कोई जानकारी न थी। लेकिन वह जानता था कि वसंत में बुलबुल खूब गाती हैं और उनका गाना लोगों को दिलासा देता, लोगों को अपनी पीड़ाएँ भूलने में मदद करता है।

लड़ाई चलती रही, महाकाल का ताण्डव होता रहा। लेकिन वसन्त के

बाहुपाश में धरती उल्लसित हो उठी, मैदानों पर हरित कालीन बिछ गए। सन्ध्याएँ हल्की नारंगी किरणों से आलोकित होने लगीं और जैसे इस समस्त सौन्दर्य से तादात्म्य के लिए वसन्त ने लम्बे पोपलर के पेड़ की फुनगी पर बुलबुल को बैठाकर गाने का आदेश दे दिया था।

सार्जेण्ट को वसन्त की अनुभूति पूरे तन-मन से हो रही थी। इस अनुभूति से हृदय के आप्लावित होने पर वह गा उठता था—

मुझे प्यार है, वसन्त का इन्तजार है,
प्रेयसी से मिली प्रेम-पाती-सा।
वसन्त के आगमन में प्रतीक्षारत
गीत गाती बुलबुल मधु-सा।

इसके बाद बुलबुल की स्वर-लहरी फूट पड़ती। उसके गीत किसी उमसे दिन में स्वच्छ सोते के जलरव-से होते।

पूरा-का-पूरा दस्ता उसकी स्वर-लहरी में खो जाता।

"यह हमारी बुलबुल है, हमारी बैटरी की बुलबुल, वह तोपों की गड़बड़ाहट से न तो भयभीत होती है न उड़ भागती है !"

अस्केर सीना ठोंककर शेखी बघारता—"मेरे कारण। अगर मैं नहीं होता, बुलबुल कब की उड़नछू हो गई होती।"

कई दिनों बाद, सवेरे-सवेरे जब सार्जेण्ट लड़ाई के लिए तोपखाने को तैयार कर रहा था, किसी उल्लू की आवाज गूँज उठी। आवाज हूबहू उसी जगह के आस-पास से आई थी जहाँ से बुलबुल का गीत आमतौर से सुनाई देता था और उस आवाज को सुनकर सार्जेण्ट की रीढ़ में सिहरन हो आई। अस्केर कायर नहीं था—उसे किसी चीज का भय न था और कई बार उसने आँखों में आँखें डालकर मौत का सामना किया था लेकिन इस समय भय ने उसके हृदय को जकड़ लिया था।

उल्लू की चीख में बुलबुल का गीत डूबा नहीं। अस्केर सुनता रहा। वह उल्लू के ठिकाने का पता लगाना चाहता था। उसकी चीख कभी बहुत दूर से, कभी एकदम आस-पास से आती सुनाई देती।

अस्केर को इस पक्षी से घृणा थी; वह इस पक्षी को फासिज्म का प्रतीक मानता था और अगर इजाजत दी जाती तो उसका हमेशा-हमेशा के लिए काम-तमाम करने के हेतु वह आसमान जमीन एक कर देता।

उधर बुलबुल की चहचहाहट निरन्तर जारी थी। वह अपने इस दुर्वह शत्रु या दुनिया की हर चीज से बेखबर थी। अस्केर बुलबुल के लयपूर्ण गीत और उल्लू की चीखें सुनता रहा, साथ-ही-साथ भयभीत भी होता रहा कि कहीं बुलबुल किसी कारणवश न मर जाए। कभी-कभी उसे यह भी महसूस होता कि वह बुलबुल की अपेक्षा स्वयं अपने लिए और अपने दोस्तों के लिए कहीं अधिक भयभीत था। वह मन में यह विश्वास जमाने की कोशिश कर रहा था कि उल्लू मात्र एक सामान्य पक्षी है, उसे भयानक स्वर प्रकृति से मिला था और उसे अशुभ मानना अन्धविश्वास तथा अज्ञानता के सामने घुटने टेकना था। लेकिन खुद को दिलासा दिलाने के उसके सारे प्रयास निरर्थक हो रहे थे। लाख सोच-विचार के बावजूद उसका दिल जोर-जोर से धड़कता ही रहा। उसे ऐसा पूर्वाभास हो रहा था कि उल्लू बुलबुल के लिए, उसके लिए, पूरे तोपखाने के लिए—दोनों के लिए बदनसीबी लाएगा।

तोपखाने के कमाण्डर अख़्मेदोव ने अस्केर की बातें ध्यान से सुनी। युवा सैनिक की घबड़ाहट को वह ठीक महसूस कर रहा था।

"चिन्ता न करो," वह बोला। "हम उस उल्लू को ढूँढ़ निकालेंगे, उसका बसेरा नष्ट कर डालेंगे और तब हमारे तोपखाने की बुलबुल फिर गाने लगेगी।"

उस दिन दुश्मनों के हवाई जहाजों ने कई बार हमले किए। कुछ सैनिक घायल हुए तो कुछ और मरे भी।

सार्जेण्ट अस्केर हड़बड़ाता हुआ अख़्मेदोव के पास जा पहुँचा।

"कॉमरेड कमाण्डर," उसने कहा—"देखा आपने, उल्लू के यहाँ आ बसते ही हमें बदकिस्मती का मुँह देखना पड़ा।"

अख़्मेदोव भी क्षतियों एवं असफलताओं के बारे में सोच में पड़ गया। लेकिन उसके विचार अस्केर की अवसादकारी आशंकाओं से विपरीत थे।

सुबह-सुबह, तोपखाने ने अभी दुश्मन की पंक्तियों के पृष्ठभाग पर गोलों की बौछार शुरू की ही थी कि उनके ऊपर दुश्मन बमवर्षकों का एक ग्रुप मंडराता दिखाई दिया। इस बार बमों के कारण कई तोपों को नुकसान पहुँचा था; कई लोग घायल हुए थे, कुछ आहत भी हुए थे।

जैसे ही विस्फोटों की धमक शान्त पड़ी, उल्लू की चीखें सुनाई देने लगीं। हालांकि तोपखाने का कमाण्डर अन्धविश्वासी न था, वह भी गुस्से से गरज उठा—"अशुभ पक्षी !"

शेष दिन उदासीन निस्तब्धता में व्यतीत हुआ। मानो मृतकों का शोक मनाती बुलबुल भी खामोश थी। लेकिन उल्लू खुशियाँ मना रहा था। कभी उसकी चीख दूर से, कभी एकदम कैम्प के पास से आती सुनाई देती। प्रकृति भी उसकी चीखों से क्रुद्ध हो दुखी हो उठी; आकाश में बादल छा गए, हवा गुस्से से पेड़ों की फुनगियों को झकझोरने लगी।

हवा के सुर में सुर मिलाते हुए तोपखाने का कमाण्डर भी बोल उठा—"तैयार हो जाओ ! रात्रि भोजन के बाद हम यह ठिकाना छोड़ देंगे।"

दस्ता कमाण्डरों में से एक ने जिसकी अख़्मेदोव से दोस्ती थी, उससे कहा—"क्या उल्लू से डर गए ?"

दिन की घटनाओं से बुझा-बुझा सार्जेण्ट अस्केर जाहिरी तौर पर यूँ ही पूछ बैठा—"क्या हम बुलबुल को छोड़ जाएँगे ?"

"उसने तो तुम्हें पहले ही छोड़ दिया, बुद्धू," कमाण्डर ने जवाब दिया।

"नहीं, कॉमरेड कमाण्डर। वह भागी नहीं। वह अपमानित महसूस कर रही है। इसी कारण वह गा नहीं रही है।"

अस्केर को उसकी कपोल-कल्पनाओं के लिए डाँट पिलाये बिना अख़्मेदोव ने खुद पर काबू पा लिया। अस्केर स्वयं वहाँ से चला गया और गाने लगा—

मुझे एक गुलाब से प्यार है;
पंखुड़ियों के झड़ने से गुलाब जख्मी होता है।
अजनबी माली, इस बाग में कदम न रखना—
बुलबुल का दिल दुखेगा,
गुलाब बुरा मानेगा।

उनके प्रस्थान की सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी थी। अस्केर अपना बुगचा भी बाँध चुका था। उस पर लगातार नजर रख रहे अख़्मेदोव ने उसे बुलाया—"यहाँ आओ।"

अस्केर उछलकर उठ खड़ा हुआ और अपने कपड़े ठीक करता दौड़ पड़ा।

"जी, कॉमरेड कमाण्डर !"

अख़्मेदोव ने सार्जेण्ट को घूरकर देखा—"तुम कहाँ जा रहे हो ?"

"क्या हम यहाँ से कैम्प नहीं उठा रहे, कॉमरेड कमाण्डर ?"

"तुम यहीं रुकोगे।"

सार्जेण्ट कमाण्डर को दुबारा कुछ कहने का मौका नहीं देना चाहता था। "बहुत अच्छा, कामरेड कमाण्डर !" उसने कहा और सलामी दी।

"मैं यहाँ तुम्हें उस पक्षी को पकड़ने के लिए छोड़ रहा हूँ।"

अस्केर मुस्करा उठा। पहले उसे लगा कि कहीं कमाण्डर मजाक तो नहीं कर रहा है। फिर ख्याल आया—"मजाक क्यों करेगा ? बुलबुल को यहाँ नहीं छोड़ जाने के बारे में बातचीत हुई ही थी।"

"धन्यवाद, कॉमरेड कमाण्डर," वह बोला। आप जानते ही है, यह बुलबुल बहुत बेशकीमती है।"

कमाण्डर ने उसकी बात बीच में ही काट दी। "तुम्हें बुलबुल को पकड़ना नहीं है।"

"तो लवा ही सही...पक्षी यहीं कहीं छुपा होगा, पोस्ता या गेहूँ के खेत में। लगातार गाता रहता है। मैं पूरा कॉकेशिया घूम चुका हूँ; मुझे बहेलियों से भी जान-पहचान है, मैंने पक्षियों के बहुत से गीत भी सुने हैं लेकिन ऐसी सुखद लय मुझे पहले कभी सुनने को नहीं मिली थी।"

सूर्यास्त हो चुका था। अख़्मेदोव सार्जेण्ट का चेहरा तो नहीं देख सका लेकिन उसके सवर की उत्तेजना उसने जरूर महसूस कर ली थी।

"तुम्हें लवों को भी नहीं पकड़ना है," वह कोमल स्वर में बोला। "लबों...बुलबुलों, इन सबसे हमारा क्या वास्ता ? उन्हें जंगल में रहने-गाने दो।"

अस्केर उलझन में पड़ गया। क्या कमाण्डर सच में मजाक ही कर रहा था ?

अख़्मेदोव ने उसकी उलझन हटा दी। "अटकल लगाने में समय जाया न करो, अस्केर। तुम्हें उस उल्लू को पकड़ना है !"

"उल्लू को ?" अस्केर चकित था। "हम लोग तो यह जगह छोड़कर

जैसे ही विस्फोटों की धमक शान्त पड़ी, उल्लू की चीखें सुनाई देने लगीं। हालांकि तोपखाने का कमाण्डर अन्धविश्वासी न था, वह भी गुस्से से गरज उठा—"अशुभ पक्षी !"

शेष दिन उदासीन निस्तब्धता में व्यतीत हुआ। मानो मृतकों का शोक मनाती बुलबुल भी खामोश थी। लेकिन उल्लू खुशियाँ मना रहा था। कभी उसकी चीख दूर से, कभी एकदम कैम्प के पास से आती सुनाई देती। प्रकृति भी उसकी चीखों से क्रुद्ध हो दुखी हो उठी; आकाश में बादल छा गए, हवा गुस्से से पेड़ों की फुनगियों को झकझोरने लगी।

हवा के सुर में सुर मिलाते हुए तोपखाने का कमाण्डर भी बोल उठा—"तैयार हो जाओ ! रात्रि भोजन के बाद हम यह ठिकाना छोड़ देंगे।"

दस्ता कमाण्डरों में से एक ने जिसकी अखूमेदोव से दोस्ती थी, उससे कहा—"क्या उल्लू से डर गए ?"

दिन की घटनाओं से बुझा-बुझा सार्जेण्ट अस्केर जाहिरी तौर पर यूँ ही पूछ बैठा—"क्या हम बुलबुल को छोड़ जाएँगे ?"

"उसने तो तुम्हें पहले ही छोड़ दिया, बुद्धू," कमाण्डर ने जवाब दिया।

"नहीं, कॉमरेड कमाण्डर। वह भागी नहीं। वह अपमानित महसूस कर रही है। इसी कारण वह गा नहीं रही है।"

अस्केर को उसकी कपोल-कल्पनाओं के लिए डाँट पिलाये बिना अखूमेदोव ने खुद पर काबू पा लिया। अस्केर स्वयं वहाँ से चला गया और गाने लगा—

मुझे एक गुलाब से प्यार है;
पंखुड़ियों के झड़ने से गुलाब जख्मी होता है।
अजनबी माली, इस बाग में कदम न रखना—
बुलबुल का दिल दुखेगा,
गुलाब बुरा मानेगा।

उनके प्रस्थान की सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी थी। अस्केर अपना बुगचा भी बाँध चुका था। उस पर लगातार नजर रख रहे अखूमेदोव ने उसे बुलाया—"यहाँ आओ।"

अस्केर उछलकर उठ खड़ा हुआ और अपने कपड़े ठीक करता दौड़ पड़ा।

"जी, कॉमरेड कमाण्डर !"

अखूमेदोव ने सार्जेण्ट को घूरकर देखा—"तुम कहाँ जा रहे हो ?"

"क्या हम यहाँ से कैम्प नहीं उठा रहे, कॉमरेड कमाण्डर ?"

"तुम यहीं रुकोगे।"

सार्जेण्ट कमाण्डर को दुबारा कुछ कहने का मौका नहीं देना चाहता था। "बहुत अच्छा, कामरेड कमाण्डर !" उसने कहा और सलामी दी।

"मैं यहाँ तुम्हें उस पक्षी को पकड़ने के लिए छोड़ रहा हूँ।"

अस्केर मुस्करा उठा। पहले उसे लगा कि कहीं कमाण्डर मजाक तो नहीं कर रहा है। फिर ख्याल आया—"मजाक क्यों करेगा ? बुलबुल को यहाँ नहीं छोड़ जाने के बारे में बातचीत हुई ही थी।"

"धन्यवाद, कॉमरेड कमाण्डर," वह बोला। आप जानते ही है, यह बुलबुल बहुत बेशकीमती है।"

कमाण्डर ने उसकी बात बीच में ही काट दी। "तुम्हें बुलबुल को पकड़ना नहीं है।"

"तो लवा ही सही...पक्षी यहीं कहीं छुपा होगा, पोस्ता या गेहूँ के खेत में। लगातार गाता रहता है। मैं पूरा कॉकेशिया घूम चुका हूँ; मुझे बहेलियों से भी जान-पहचान है, मैंने पक्षियों के बहुत से गीत भी सुने हैं लेकिन ऐसी सुखद लय मुझे पहले कभी सुनने को नहीं मिली थी।"

सूर्यास्त हो चुका था। अखूमेदोव सार्जेण्ट का चेहरा तो नहीं देख सका लेकिन उसके सवर की उत्तेजना उसने जरूर महसूस कर ली थी।

"तुम्हें लवों को भी नहीं पकड़ना है," वह कोमल स्वर में बोला। "लबों...बुलबुलों, इन सबसे हमारा क्या वास्ता ? उन्हें जंगल में रहने-गाने दो।"

अस्केर उलझन में पड़ गया। क्या कमाण्डर सच में मजाक ही कर रहा था ?

अखूमेदोव ने उसकी उलझन हटा दी। "अटकल लगाने में समय जाया न करो, अस्केर। तुम्हें उस उल्लू को पकड़ना है !"

"उल्लू को ?" अस्केर चकित था। "हम लोग तो यह जगह छोड़कर

जा रहे हैं न ? उसे दिल-भर चीखने दीजिए फिर। हमें उल्लू से क्या लेना-देना ?''

''पहले हम उसे पकड़ेंगे। फिर देखेंगे, उसका क्या करना चाहिए।''

और अख़्मेदोव सार्जेण्ट को बात समझाने लगा। आवश्यक निर्देश देने व सार्जेण्ट को विदा करने के बाद अख़्मेदोव ने राजनीतिक अनुदेशक को बुला लिया—''क्या तोपखाना तैयार है ?'' उसने पूछा। हाँ में जवाब मिलने के बाद उसने कहा।

''जवानों को तोपें यथास्थान छोड़ देने को कहा। पथरीली सड़क से आगे बढ़कर दो-तीन गाड़ियों को खूब शोर मचाने का आदेश दे दो। यहाँ रहने वाले हर किसी को चेता दो कि उनके जाने के बाद सूई गिरने की भी आवाज न हो। सन्तरियों की ड्यूटी लगा दो और बाकी लोगों को सोने दो। गाड़ियों के साथ जाने वाले लोगों को दूसरी ऊपर वाली सड़क से दो घण्टे बाद लौटना चाहिए। यकीनी तौर पर सब कहीं पूरी खामोशी होनी चाहिए। फिर हम देखेंगे कि हमारा उल्लू क्या करता है।''

गाड़ियों की चर्र-चूँ व खड़पड़ बन्द होने के बाद ही उल्लू कई बार चीख उठा।

''चीखने दो,'' अख़्मेदोव सोच रहा था। ''हमारे जवानों को इससे मदद ही मिलेगी।''

न तो तोपखाने के कमाण्डर को, न तो राजनीतिक अनुदेशक को, न तो बैटरी कमाण्डर को ही उस रात नींद आयी। वे बैठे-बैठे रात्रिकालीन ध्वनियों को तत्परतापूर्वक सुनते रहे। हर कोई जानने को उत्सुक था कि निस्तब्धता के इस पर्दे के पीछे क्या हुआ...

अचानक ही चोटी पर से सीटी की आवाज सुनाई दी; एक हथगोला फूटा और कोई गरज उठा—''हाथ ऊपर !''

लगातार कई गोलियाँ चलीं और फिर खामोशी छा गई। उस खामोशी को तोड़ती एक सुखद लयात्मक स्वर-लहरी सुनाई दी—

ऐ उर-बसी, गुलाब का सौन्दर्य है अक्षुण्ण,
जब तक उसे तोड़ा न जाये !
बगिया में गुलाब का दिल जीतने के लिए,
बुलबुल को आठ-आठ आँसू बहाने पड़ेंगे।

''लगता है अस्केर अपने शिकार के साथ आ रहा है,'' राजनीतिक अनुदेशक फुसफुसाकर बोला।

और दस मिनट बीतते न बीतते अस्केर आ पहुँचा। सैल्यूट देने के बाद उसने रपट दी—''कॉमरेड कमाण्डर, आपका आदेश पूरा किया गया। हमने उल्लू पकड़ लिये हैं। लेकिन एक जीवित नहीं रहा...''

वे खाई के अन्दर चले आए। जो कुछ हुआ था, उसके बारे में अस्केर जल्दी-जल्दी बताने लगा।

''जब गाड़ियों का शोर सुनाई दिया, वे अपनी छुपी जगहों से बहार निकल आए। वे आगे बढ़ने लगे और हम पूरी चौकसी से उनके पीछे-पीछे चल पड़े। हमें गाड़ियों का चर्र-चूँ व शोर-शराबा सुनाई दे रहा था। फिर मैंने देखा तो वे आपस में खुसुर-फुसुर करने लगे और उनमें से एक ने उल्लू की तरह चीखा। मैं आश्चर्यचकित हो उठा। यह रही बात ! तभी मुझे पता चला कि कौन-सा उल्लू हमारे पास आ बसा। फिर वे दो आदमी आपस में भौंकते-से बातचीत करने लगे। उनमें से एक छुपने की जगह पर जाकर रेडियो के द्वारा कोई सन्देश भेजने में लग गया। दूसरा आदमी उल्लू की नकल करता कई बार चीखा और फिर अपने साथी के पास चला गया। मैंने अपने जवानों को करीब आ पहुँचने का संकेत दिया; मैं उन पक्षियों को जिन्दा पकड़ना चाहता था। लेकिन उनका ध्यान हमारी ओर आकृष्ट हो गया। एक ने उछलकर हम पर हथगोला फेंक दिया...उसे मैंने गोली मार दी। दूसरे को हम जिन्दा पकड़ लाए हैं।''

वे कैदी को अन्दर ले आए। वह बड़ा हट्टा-कट्टा था। मोमबत्ती के क्षीण प्रकाश में भी उसके भूरे मैले बाल, गेहुआँ पीले चेहरे और बड़ी-सी चौकोर ठुड्डी तथा हरी-हरी वहशियाना आँखों को साफ-साफ देखा जा सकता था। वह नजरें नहीं चुरा रहा था और जाल में फँसे किसी भेड़िये की तरह इधर-उधर देख रहा था।

अख़्मेदोव ने रेडियो की ओर इंगित किया—''इस सिलसिले में तो बात साफ-साफ समझ में आती है। लेकिन वह उल्लू की तरह चीखता क्यों था ?''

राजनीतिक अनुदेशक ने कमाण्डर के प्रश्न का अनुवाद कर दिया। अपनी नजरें ऊपर उठाये बिना दुश्मन खामोश रहा।

"इसी के कारण तो तुम्हें धोखा हुआ," अख़्मेदोव ने आगे कहा।

लेकिन जर्मन बस एक ही शब्द दुहराता रहा—"बुलबुल...बुलबुल..."

"यह बोलना नहीं चाहता, इसलिए मुझे सब कुछ बताने की आज्ञा दीजिए," अस्केर बीच में ही बोल उठा। "यह लोग बुलबुल को चिढ़ाने के लिए उल्लू की बोली में चीख रहे थे। वही जो दूसरा बन-मानुस मर गया, उल्लू की बोली बोलता था..."

कैदी को यूनिट के मुख्यालय ले जाया गया। अख़्मेदोव तोपखाने के बीच से गुजरते हुए राजनीतिक अनुदेशक से बोला—"अब दिलचस्प लड़ाई होगी। दुश्मन अभी तक अपने 'उल्लू' पर भरोसा कर रहे होंगे। उन्हें तो यह नहीं मालूम कि उनके उल्लू का क्या हो गया ?"

सुबह होने को थी। ताजा हवा बह रही थी। किसी कोमल-ललित सुन्दरी की तरह दूज का चाँद सुबह के झुटपुटे में अपना पीताभ प्रकाश घोल रहा था। हल्के-हल्के टिमटिमाते तारे छुप गए और शुभ्र होते नभ में घुल गए। विश्व में ऐसा आमोद-प्रमोद मचा था मानो रक्तपात व दुःख-दर्द का अस्तित्व ही न हो। यह फूलों की सुगन्धि में सराबोर था। पक्षियों ने गाना शुरू कर दिया था लेकिन उनके समवेत् में बुलबुल की चहक न थी।

बुलबुल खामोश थी।

"बैटरी !" चौकस करता तीव्र आदेश सुनाई दिया। जवान काँप उठे। "फायर !" तोपचियों ने दुश्मन के सपने पूरे नहीं होने दिए। गोलों की बौछार दुश्मन पर होने लगी। छुपाव स्थल व कमाण्ड पोस्ट नष्ट कर दिए गए; मोर्चेबन्दियों और खाइयों को गोलों के विस्फोटों ने उड़ा दिया।

गोलाबारी बन्द होने के बाद अस्केर जंगल की ओर बढ़ा। सिर्फ वही नहीं, सारा-का-सारा तोपखाना बुलबुल का गीत सुनने को प्यासा था।

"गा, मेरी बुलबुल, गा !" हमेशा की तरह अस्केर ने जोरों से आवाज दी।

बुलबुल मौन थी।

दूसरों ने भी आवाज दी लेकिन बेकार।

बुलबुल गायब हो चुकी थी।

सैनिक ने प्रश्नात्मक दृष्टि से तोपखाने के कमाण्डर की ओर देखा। अख़्मेदोव कुछ कदम आगे आकर बड़े जोरों से बोला उठा—"गा, हमारी बुलबुल, गा !"

बुलबुल चुप रही।

नीचे गेहूँ के खेत में वर्तिक उल्लसित स्वर में चहक उठी, झाड़ियों में भी दूसरे पक्षी गा उठे। लेकिन बुलबुल का गीत सुनाई नहीं दिया।

हर कोई इस प्रत्याशा में था कि बुलबुल अब या तब गाना शुरू कर देगी और वे आत्मा को हर्षिक करने वाली उसकी चहक सुन सकेंगे।

न जाने कब तक वे इसी तरह इन्तजार करते रहते कि तभी एक सैनिक हाथ में कागज का कोई टुकड़ा लिये अख़्मेदोव के पास आ पहुँचा।

"कॉमरेड कमाण्डर, यह कागज मुझे मृत जर्मन की जेब में मिला था। इसे पढ़िए। हो सकता है, यह काम का हो।"

अख़्मेदोव ने कागज राजनीतिक अनुदेशक की ओर बढ़ा दिया।" तुम्हें जर्मन भाषा आती है। पढ़ो इसे !"

राजनीतिक अनुदेशक पहले मन-ही-मन में खत पढ़ने लगा। अस्केर सहित वहाँ उपस्थित सब किसी ने देखा कि पंक्तियों को वह जैसे-जैसे पढ़ता जा रहा है, उसके चेहरे पर कालिमा छाती जा रही थी।

"उल्लू, वास्तविक उल्लू !" वह बोला। "सुनिए, उसने क्या लिखा है। मेरे दोस्त, तुम्हें मालूम है कि मुझे पक्षी, फूल और प्रकृति की हर चीज से कोई खास दिलचस्पी नहीं है। उस बुलबुल के कारण मेरी रातों की नींद हराम हो गई थी। हमें यहाँ एक मिशन पर भेजा गया था लेकिन वह हमारे सिरों पर चहकती रहती थी। इसे बमों और गोलियों का भी कोई डर नहीं, बस गाती ही गाती रहती है। लाल सेना वालों को उससे प्रेम है। उन्हें चिढ़ाने के लिए मैंने उल्लू की बोली में चीखना शुरू कर दिया। तुम तो जानते ही हो पूर्व में उल्लू अशुभ माने जाते हैं; वहाँ लोग उनसे नफरत करते हैं। मेरा ख्याल था कि बुलबुल उल्लू की बोली से डरकर भाग जाएगी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ !...आखिर मैंने उस बुलबुल का काम-तमाम करने की ठान ली। मैंने सोवियत पोशाक पहन ली। दूर में तोपों की गरज के कारण बुलबुल का निशाना लेना आसान था लेकिन वह फौरन नहीं मरी। लेकिन इस देश में तो किसी पक्षी तक पर तरस नहीं खाया जा सकता। मैंने उसका गला अपने हाथों से घोंट डाला। कुछ ही घण्टों में हम अपेन इलाके में चले जाएँगे; मैं इस मृत बुलबुल को साथ ले जाऊँगा जिससे कि इस खत के साथ तुम्हें वही एक मृत क्रीमियाई बुलबुल भी हासिल हो।"

कुछ देर तक राजनीतिक अनुदेशक खत को हाथ में ही पकड़े रहा; उस जल्लाद, उस परपीड़क को एक निरीह पक्षी पर भी दया नहीं आई थी। क्या बोलें, किसी को कुछ नहीं सूझ रहा था।

अख़्मेदोव ने अस्केर के स्याह पड़े चेहरे पर नजर डाली।

"शोक न करो, भाइयो। यहाँ बुलबुल की कोई कमी नहीं...सैकड़ों बुलबुल हैं... ।"

मानो उसकी बात की पुष्टि करते हुए एक विलक्षण चहक सुनाई दी।

तोपखाने के जवानों ने एक-दूसरे की ओर देखा और खुशी से चिल्ला उठे–"गा, मेरी बुलबुल, गा !"

बुलबुल गाने लगी।

जीवन के लिए, वसन्त के लिए अपने दुश्मनों से प्रतिशोध लेने के हेतु उनका आह्वान करते हुए अपने स्वर में चिन्ता व पीड़ा भरकर बुलबुल स्वाधीनता का गीत गा रही थी।

छवैया और लाल फूल

शहर के चोटी वाले हिस्से के एक मकान पर जब वृद्ध कारा अपने शिष्य के साथ चढ़ रहा था, सूर्योदय होने ही वाला था।

दोनों ही लम्बे व सुगठित थे, दोनों ने ही तेल के दाग वाली मोटिया कमीजें पहन रखी थीं। वृद्ध ने भौंहों तक लटकती एक पुरानी भूरी टोपी पहन रखी थी लेकिन नौजवान का सिर धूप व हवा में खुला था और काले बाल बीच से कढ़े थे। दाएँ हाथ में वृद्ध ने समय के साथ कोयले की तरह काला पड़ा एक पुराना पाइप थाम रखा था।

वे छत पर साथ-साथ चलते हुए एक छोर से दूसरे छोर तक गए।

नौजवान ने पूछा—"क्या हम काम शुरू करेंगे ?" वृद्ध ने सिर हिलाकर सहमति जता दी।

नौजवान सीढ़ी के सहारे नीचे उतर गया और वृद्ध ने थैले से तम्बाकू निकालकर बिना किसी उतावलेपन के पाइप में भरना शुरू कर दिया और इसके साथ-साथ वह सूर्य की रोशनी से चौंधियाती आँखों को सिकोड़े काम की जगह का मुआयना भी करता जा रहा था।

छत का पुराना किर' मुलायम होकर फैल गया था। फिर यहाँ-वहाँ सिकुड़ गया था और दरारें पड़ गई थीं।

फिर वृद्ध को वह जगह दिखाई दी जहाँ फिर किसी फफोले की तरह फूलकर फूट गया था और उसमें बने छेद से एक फूल उगकर बाहर निकल आया था। उसका रंग चमकता लाल था और उगते सूरज की रोशनी में किसी लाल मणि की तरह प्रभासमान था। छोटे-छोटे हरे पत्तों ने उसे घेर रखा था।

फूल पर आँखें टिकाये वृद्ध ने पाइप जला लिया। किर से छत की मरम्मत करते समय उसे ऐसी चीजें प्रायः देखने को मिलती रहती थीं—खासतौर से वसन्त या पतझड़ के समय और हमेशा वह जब कभी ऐसे फूलों की ओर झुकता था, उसे ऐसी अनुभूति होती थी मानो वे उससे कुछ कहना चाहते हों। लेकिन क्या ? वृद्ध ने इसके बारे में कभी गहराई से नहीं सोचा था। वह बस देखकर ही सन्तोष कर लेता था।

सूरज क्षितिज से हटकर सागर के ऊपर आ लटका। चरमराते जोड़ों को सीधा करने के बाद वृद्ध ने टोपी को आँखों पर अधिक झुकाते हुए पूरब की ओर देखा। मोटे चमड़े के बूट वाले उसके पैर चौड़ाई में पूरी तरह फैले थे। उसे देखने पर ऐसा लगता था मानो वह वहाँ पर आदिकाल से खड़ा था और प्रलय तक वहीं खड़ा रहेगा।

धूप से वृद्ध का चेहरा साँवला हो गया था। पतझड़ के खेतों की हल-रेखाओं की तरह उसके चेहरे पर काली धँसी झुर्रियाँ थीं।

नौजवान का सिर छत के किनारे ऊपर निकलता दिखाई दिया। औजारों का झोला वृद्ध को थमाने के लिए वह सीढ़ी के सबसे ऊपर वाले डण्डे पर खड़ा था। फिर दोनों ने सब्बल हाथों में लेकर पुराने किर को छत पर से तोड़-तोड़कर नीचे अहाते में फेंकना शुरू कर दिया।

जब यह काम खत्म हो गया, दोनों सीढ़ियों से नीचे उतर आए और वृद्ध ने जेब का बटन खोलकर एक रूबल बाहर निकाला।

"यह लो !"

"मेरे पास पैसे हैं !"

"कोई बात नहीं, ले लो।"

हाथ में रूबल थमाकर नौजवान दौड़ता चला गया। वृद्ध उसकी ओर प्रशंसा भरी नजरों से देखता रहा। फिर दीवार की छाया में बैठकर उसने अपना पाइप सुलगा लिया।

वह इधर-उधर आने-जाने वाले लोगों और यातायात को देखता प्रतीत होता था। लेकिन सत्तर साल में शहर के शोर-गुल में उसकी दिलचस्पी खत्म हो गई थी। वह इनसे परे कुछ देखता रहता था मानो सड़क के दूर किनारे पर किसी चीज़ की तलाश हो। लेकिन उसे खुद नहीं मालूम था कि वहाँ उसे किस चीज को देखने की प्रत्याशा थी। बस यूँ ही देखता रहता था।

बाँह के नीचे कागज का एक ठोंगा दबाये और हाथ में एक अखबार लिये कहीं पास से नौजवान आ पहुँचा।

"आज का अखबार है ?" वृद्ध ने पूछा।

"हाँ। कोई खास खबर नहीं। देखना चाहते हैं ?"

मुँह में पाइप दबाए वृद्ध ने अखबार खोलकर आराम से देखना शुरू कर दिया और नौजवान झोले से चुक्र का एक गुच्छा निकालकर मकान के फाटक से अन्दर जाते हुए बोलता गया—"अभी धोकर लाता हूँ।"

जब तक नौजवान लौटा वृद्ध ने अखबार फैलाकर रोटी, पनीर, सॉसेज के साथ बीयर की दो बोतलें उस पर रख दी थीं। फिर समय के साथ काला पड़ा सींग की मूठ वाला चाकू निकालकर वृद्ध ने सॉसेज के टुकड़े काटना शुरू कर दिया।

"क्या आपके ख्याल से हम सात बजे तक काम खत्म कर लेंगे ?" नौजवान ने अचानक ही पूछा।

"काम ? हाँ, उम्मीद तो है।" वृद्ध ने उसकी ओर देखा। 'सात बजे तक।' लड़का नौजवान था। उसे वे दिन याद आ गए जब वह खुद नौसिखुआ का काम करता था और ऐसे ही सवाल पूछता था। तब से न जाने कितना समय बीत चुका था लेकिन कभी-कभी ऐसा लगता था मानो

कल की ही बात हो।

खाना खाने के बाद बचे-खचे खाद्य पदार्थ को अखबार में लपेटकर उन्होंने पिछले दिन वहाँ लाए गए बड़े धूएँ से काले पड़े कड़ाह के नीचे आग जला दी।

इस कड़ाह से वृद्ध का आधी सदी से परिचय था—वह कोलतार में उठते बुलबुले को ही देखता रहा था। आज के इस नौजवान की तरह ही न जाने कितने साल तक आस्तीनें ऊपर चढ़ाकर वह किर को फेंटता रहा था। फिर उसकी बाँह की शक्ति के आगे हार मानकर मुलायक होता चला जाता था।

जब पहली दफा उसने किर को फेंटा था, वह एकदम नौजवान ही था और एक वृद्ध कारीगर के अधीन उसने काम सीखना शुरू ही किया था। कारीगर के अधीन उसने काम सीखना शुरू ही किया था। कारीगर का नाम भी उसी की तरह कारा ही था—कारा छवैयों का खानदानी नाम होता था। वे दोनों शहर की सबसे सुन्दर इमारत, अकादमी की इमारत की छत पर बड़ी ऊँचाई पर काम कर रहे थे। सिर्फ इसका नाम तब दूसरा था—इस्माइलिया।

वृद्ध दुबारा समय की प्रवंचककारी तेज गति के बारे में सोचने लगा। ठीक पचास साल पहले जुमे के दिन उसने कारीगर के साथ मिलकर उस इमारत की छत पर किर डालना शुरू किया था। वह नवरोज-वैराम का आखिरी जुमा था। वे सूर्यास्त तक काम करते रहे थे। फिर पास के भोजनालय से वे ताजा नान और केतली भर अच्छी चाय लाए थे।

शाम को उस्ता कारा उसे अपने घर आमन्त्रित करके ले गए थे। फाटक के पास आग की लपटें उठ रही थीं और बच्चे लपटों को देख-देखकर उत्तेजित हो शोर मचा रहे थे।

गुलसुम-बाजी (बूढ़े कारीगर की बीवी, भगवान उनकी आत्मा को शान्ति दे, वह उस्ता कारा की बड़ी अच्छी बीवी थी) गौउर्मा' के साथ पुलाव और फिर पूर्वी मिठाइयों के साथ नाशपाती के आकार वाले गिलासों में चाय ले आई।

उसे यह सारी बातें याद थीं—छोटी-बड़ी सब। वे दोनों जैसे उसकी आँखों के सामने थे—उस्ता कारा और गुलसुम-बाजी।

अब यह नौजवान फावड़े की लम्बी मूठ से पूरी ताकत लगाकर किर

फेंट रहा था। किर गुँधे आटे की तरह फैल-फैल जाता था। नौजवान की संवलायी बाँहों की माँसपेशियाँ फैल-सिकुड़ रही थीं। उसके चेहरे पर पसीने की बड़ी-बड़ी बूँदें चुहचुहा आई थीं।

वृद्ध ने पाइप का कश लेकर नौजवान की ओर प्रशंसा भरी दृष्टि से देखा। अच्छा, मजबूत नौजवान है, ठीक छवैयों की तरह ! आखिर वृद्ध ने एक पत्थर पर अपने पाइप की राख झाड़ दी।

"बस, काफी है," वृद्ध ने आवाज दी। अब थोड़ा उबलने दो। और तुम थोड़ी देर बैठकर सुस्ता लो।"

फावड़ा रखकर नौजवान ने एक रूमाल निकाल लिया। पहली बार वृद्ध ने उसके पास इतनी अच्छी तरह इस्तरी किया रूमाल देखा था (उसकी देखभाल सिर्फ उसकी बूढ़ी दादी ही करती थी)। रूमाल की इस्तरी खराब न हो जाए, इसकी चौकसी बरतते हुए बड़ी सावधानी से उसने अपने चेहरे का पसीना पोंछा।

"मैं थोड़ा पानी पीने जा रहा हूँ," उसने कहा।

"जाओ-जाओ।"

"आपको लिए भी ले आऊँ ?"

"नहीं, धन्यवाद।"

फाटक से बाहर निकलते नौजवान को वृद्ध ने पीछे से आवाज दी—"ज्यादा मत पी लेना। कुछ ही दिनों पहले तुम्हारे गले में खराश हो गई थी !"

सूरज नीचे झुक आया था लेकिन काम अभी भी बहुत बाकी था। नौजवान एक के बाद दूसरी बाल्टी भरता हड़बड़ाये ढंग से काम कर रहा था और वृद्ध छत पर खड़ा हो किर की बाल्टी खींचलेता और छत पर गाढ़ी हमवार तह फैलाये जा रहा था।

कुछ समय बाद वृद्ध ने जेब से घड़ी निकालकर देखी—पौने सात बज गए थे। तब वह छत के किनारे झुककर नौजवान से बोला—"अब चलने की तैयारी करो। काम हम कल खत्म करेंगे।" और जैसे अपने-आप से बोलते हुए कहा—"मेरी कमर थोड़ी-थोड़ी दुख रही है।"

नौजवान का चेहरा खिल उठा। उसने बाल्टी नीचे रख दी।

"तो मेरी जरूरत तो नहीं आपको ?"

"नहीं, जाओ !"

"तब फिर कल मिलेंगे।"

कन्धों पर जैकट डाल वह जल्दी-जल्दी चलता बना। लेकिन वृद्ध को कोई जल्दी न थी, उसे कहीं नहीं जाना था। सीढ़ी जोरों से हिले नहीं, इसलिए धीरे-धीरे नीचे उतरकर उसने बाल्टी उठा ली और उबलते किर में डाल दी। फिर दत पर चढ़कर उसने बाल्टी ऊपर खींच ली।

जब काम खत्म हुआ—उसने आज ही काम खत्म करने का वायदा किया था और वह अपने वायदे को तोड़ना नहीं चाहता था—अंधेरा घिर आया था। धीमे-धीमे चलकर वह सागर-तट पर जाकर पानी के निकट एक बेंच पर बैठ गया। बगल में ही एक कनेर का पेड़ उगा था।

काम खत्म होने के बाद के क्षण उसे प्यारे थे, पानी के पास वाली यह सीट उसे प्यारी थी, उसे सागर से प्यार था।

वहाँ काफी तादाद में लोग मटरगश्ती कर रहे थे। पास-पास गुँथे से जोड़े भी सामने से गुजर रहे थे। लेकिन वृद्ध की नजर उन पर न थी। सिर के ऊपर बत्तियाँ जल रही थीं लेकिन पटरी की रोशनियाँ निहारने की आँखें उसके पास न थीं। उसकी नजर सागर पर, किनारे परर बिखरती काँपती प्रकाश-रेखाओं पर टिकी थी।

खाड़ी में वाहनों की बत्तियाँ जल रही थीं। दूर चौकसी की बत्तियाँ चमक-चमक रही थीं। झाग के गोटे वाला सागर दमक रहा था। इसमें जीवन की शाश्वतता बसी थी, इसकी गति अविराम थी, अनियन्त्रिता, शाश्वत। और सगार के साथ संलाप से वृद्ध को नयी शक्ति की अनुभूति होती थी।

दो बार पाइप भरकर पीने के बाद वह उठ खड़ा हुआ। रास्ते में वह उस मकान के पास से गुजरा जिसकी छत पर उसने कुछ ही समय पहले किर की तह चढ़ाई थी। उस मकान के पास से गुजरते समय उसे जालीदार पर्दों से सुप्रकाशित कमरा दिखाई दिया, मेज लगी थी और दो बच्चों के साथ एक पुरुष बैठा था। वे रात का खाना खा रहे थे। रेडियो पर मधुर संगीत आ रहा था।

...शहर के बहिर्वर्ती हिस्से में स्थित अपने छोटे-से कमरे का दरवाजा खोलकर वृद्ध ने रोशनी जला दी। छत से बिना शेड वाला लैम्प लटक रहा

था, एक मेज थी जिस पर मोमजामे का मेजपोश बिछा था, कुर्सियाँ थीं, एक लोहे का पलंग था जिस पर घिसा-पुराना तोशक पड़ा था। हर चीज घिसी पुरानी लेकिन साफ-सुथरी थी।

बिना किसी हड़बड़ी के जैकेट उतारकर वृद्ध के दरवाजे के पास वाली खूँटी पर टाँग दिया। कमरे से सटी छोटी-सी रसोई में जाकर उसने आलमारी से मट्ठे का एक मर्तबान निकाला (एक पड़ोसिन हर दिन उसके लिए मट्ठा खरीदकर यहाँ रख जाती थी)। मट्ठा पीकर कमररे में लौटने के बाद उसने खबरें सुनने के लिए रेडियो चला दिया। खबरों के बाद संकरुण लोक गीत 'सेगुआख' की घोषणा की गई।

कभी वृद्ध को खान शुशिन्स्की के गाये 'सेगुआख' गीत सुनने के अलावा कुछ भी नहीं भाता था। लेकिन अब—अब उसने रेडियो बन्द कर दिया। जब से उसने सुना था कि उसका बेटा जावांशीर मोर्चे से कभी घर नहीं लौटेगा, वह 'सेगुआख' सुनने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। उसके स्नायु अत्यन्त संवदेनशील हो गए थे। उसके हृदय में दुःख इस तरह भर गया था कि अब और जगह ही नहीं बची थी...

इसलिए वृद्ध ने रेडियो बन्द कर दिया। वह सोने के लिए लेट तो गया लेकिन नींद नहीं आ रही थी।

एक आदमी जो हर दिन वृद्ध के पास आता था, वह था वही उसका नौजवान शिष्य। लेकिन पिछले दस दिनों से वह भी नहीं आया था। क्यों ? लेकिन जवान से पूछा कैसे जा सकता था ?

उठकर उसने बत्ती बुझा दी। कुछ पलों के लिए उसे कुछ भी दिखाई नहीं दिया, वह उसी अंधेरे में जाकर लेट गया। लेकिन विचार आते-जाते रहे और उनके साथ ही रोशनी और उम्मीद भी।

वह सोच रहा था कि कल लड़का काम खत्म देखकर हैरान हो उठेगा। और यह कि फिर वे किस तरह पास के घरों की छतों पर काम शुरू करेंगे। और यह कि लोग किस तरह उनका शुक्रिया अदा करेंगे, घर के अन्दर आमन्त्रित करेंगे।

लोग उसके काम में हमेशा सन्तुष्ट होते थे, उसका आदर करते थे और इसी कारण उसके पास काम कराने वालों के नामों की एक सूची पहले से होती थी और कारीगर कारा को भी कभी इस बात का गर्व था।

सोने से पहले वृद्ध फिर फेंटते उसी नौजवान के बारे में सोच रहा था।

दूसरे दिन उन्होंने पड़ोस के घर में काम किया। पहले की ही तरह वृद्ध छत पर और लड़का नीचे जमीन पर काम कर रहा था। जब काम खतम होने को था और वृद्ध ने नीचे झुककर बाल्टी उठानी चाही तो उसे पास ही खड़ी एक लड़की दिखाई दी। उसने काम के समय पहनाया जाने वाला ओवरऑल पहन रखा था। उसके छोटे बाल पीछे की ओर लाल फीते से बंधे थे। उसे देखते ही पता चलता था कि वह अभी-अभी नहाकर आई थी, उकसे ललाट के बाल अभी तक गीले थे। पीठ के पीछे हाथ रखे वह लड़की नौजवान की ओर देख रही थी। नौजवान बड़ी तेजी से बाल्टी भर-भरकर जा रहा था। चूँकि वह हड़बड़ाया था, इसलिए थोड़ा-थोड़ा फिर हर बार छलककर नीचे गिर पड़ता था।

वृद्ध सोच रहा था, शायद कोई जिज्ञासु राहगुजर होगी। लोग प्रायः उन्हें काम करते देखने के लिए रुक जाते थे। लेकिन काम खत्म होने के बाद जब वृद्ध नीचे उतरा, नौजवान ने लड़की की ओर सिर से इशारा किया।

''मैं आपसे परिचय कराना चाहता हूँ, उस्ता।''

भौंहों के नीचे से देखती लड़की वृद्ध के निकट आ गई। फिर वह अचानक ही मुस्करा उठी। उसके दाँत एकदम सफेद थे और काले-काले बालों में लाल फीता लगा था।

लड़की का हाथ कोमल ढंग से दबाकर वृद्ध ने अपना पाइप बाहर निकाल लिया।

''काम करती हो ?'' पाइप साफ करते हुए वृद्ध ने पूछा।

''नये फिल्म स्टूडियो का निर्माण कर रही है,'' नौजवान ने उसकी ओर से जवाब दिया। ''अभी वहीं से आ रही है।''

जैसे और कुछ पूछे जाने के इन्तजार में वृद्ध के चेहरे की ओर देखती लड़की उसके निकट ही खड़ी रही। लेकिन वृद्ध ने कुछ भी नहीं पूछा।

''अगर अब आपको मेरी जरूरत नहीं तो...''

''हाँ-हाँ, जाओ, जाओ,'' वृद्ध ने कहा।

लड़का पल भर को हिचकिचाया, फिर मुड़ा और दोनों आगे बढ़ गए।

''रशीद,'' वृद्ध ने लड़के को अचानक आवाज दी।

जब लड़का लौटकर आया, वृद्ध ने तीन रूबल का नोट उसके हाथ में थमा दिया।

''क्या आपको काम के लिए पैसे मिल चुके हैं ?''

''नहीं, लेकिन...''

''शुक्रिया !'' लड़की तक पहुँचने के लिए लड़का दौड़ पड़ा।

उसके बाद से लड़की ने हर दिन आना शुरू कर दिया। लड़की को देखते ही रशीद हड़बड़ा उठता और फिर छलककर बाल्टी से जमीन पर गिर पड़ता। और जैसे ही कारीगर की इजाजत मिलती, वह झपटकर जैकेट उठा लेता और दोनों साथ-साथ चलते बनते।

वृद्ध कोई सवाल नहीं करता। समय आने पर वे खुद उसे बताएँगे। लेकिन जिस दिन से लाल फीते वाली लड़की ने आना शुरू किया था, वह सपनों की दुनिया में रहने लगा था। वह युवा लोगों के ब्याह की कल्पना करता और सोचता कि पहला बच्चा होने पर वे उसका नाम कारा रखेंगे। भावी युवा परिवार के जीवन का हर दिन उसकी आँखों के सामने से गुजर जाता। इस ब्लाक के सभी मकानों की छतें ठीक करने पर कितने पैसे मिलेंगे, वह बार-बार गिनता रहता और मन-ही-मन वह उन सारी चीजों का अन्दाज लगाता रहता जिनकी जरूरत ब्याह के समय पड़ेगी।

एक खुशगवार इतवार को अप्रत्याशित घटना हुई।

स्नान-गृह से लौटने के बाद वृद्ध जब अपने एकाकी कमरे में चाय तैयार कर रहा था, तभी दरवाजे पर दस्तक हुई।

इस बार नौजवान अकेला नहीं आया था। लेकिन वृद्ध को और भी अधिक खुशी हुई थी

''आओ, बैठो,'' वह हड़बड़ाकर बोला। ''अन्दर में दमघोंट है,'' और उसने कमरे की एकमात्र खिड़की खोल दी।

दोनों ने सबसे अच्छे कपड़े पहन रखे थे। लड़के ने सफेद कमीज और नीली टाई पहन रखी थी। लड़की की कलाई में सोने की छोटी-सी घड़ी चमक रही थी।

अचानक वृद्ध को महसूस हुआ कि लड़के में पहले जैसी सहजता और लापरवाही न थी, शायद कोई चीज उसे परेशान कर रही थी।

''आज मौसम काफी अच्छा है,'' वृद्ध ने अचानक ही कहा।

रशीद ने तेजी से उसकी ओर देखा। पहली दफा उसने कारीगर के मुँह से कोई बेकार-सी बात सुनी थी या उसके चेहरे पर निरर्थक मुस्कान देखी थी।

वृद्ध उठकर रसोई में चला गया और पुरोन फैशन के फूलदार ट्रे में तीन गिलास चाय ले आया।

"आपको तकलीफ नहीं करनी चाहिए थी, उस्ता," नौजवान बोला। "वह लड़की ले आती..."

"तकलीफ ! या खुदा, इसमें तकलीफ क्या है ?...वृद्ध ने दोनों पर से दृष्टि हटाकर बाहर की ओर देखा। "तुम पल भर यहीं बैठो मैं अभी..."

लड़के ने वृद्ध की बाँह पकड़ ली।

"लेकिन उस्ता, हम खाना खा चुके हैं। परेशान न हों। या शायद आपको भूख लगी है ?"

वृद्ध ने सिर हिला दिया।

"तब फिर बैठिए, मुझे आपसे कुछ कहना है।"

नौजवान ने वृद्ध को पहले कभी उधेड़बुन में नहीं देखा था।

सब चुप थे। खामोशी वृद्ध की सहनशक्ति को पार कर गई थी।

"चाय पीओ, नहीं तो ठण्डी हो जाएगी," उसने कहा।

कई वर्षों से पहली दफा रशीद ने वृद्ध के स्वर में इतनी उदासी महसूस की थी, इतना स्नेह महसूस किया था। उसका दिल डबडब हो रहा था।

जल्दी से गिलास उठाकर उसने कुछ ही घूँट में चाय पी डाली। खाली गिलास लेने के लिए वृद्ध ने हाथ बढ़ा दिया लेकिन नौजवान ने रोक लिया।

"शुक्रिया, मुझे और चाय नहीं चाहिए।"

वृद्ध ने नौजवान की ओर भौं चढ़ाकर देखा।

"आज सुबह किले से दो आदमी आए थे," वह बोला। "मैंने कह दिया है कि अभी बहुत काम है, हम पन्द्रह के बाद ही आ सकेंगे।"

नौजवान ने लड़की की ओर देखा। दुबारा खामोशी छा गई। आखिर रशीद झटके से सीधा बैठ गया।

"उस्ता, मैं कल नहीं आ पाऊँगा।"

"क्या मतलब ?" वृद्ध की आवाज घुटी-सी थी।

"मैं किर फेंटने के लिए नहीं आ पाऊँगा।"

"क्यों ?"

"मैं पढ़ने के लिए जाऊँगा।"

"कहाँ ?" वृद्ध ने ना समझने का बहाना किया।

"ट्रांसपोर्ट तकनीकी स्कूल में।"

कई मिनटों तक वृद्ध कुछ भी नहीं बोला।

"क्या तुम्हें दिक्कत नहीं होगी ?"

लड़के ने वृद्ध के मन की बात समझ ली।

"नहीं, सब ठीक रहेगा, हम काम चला लेंगे," उसने कहा।

"मैं काम करूँगी, वह पढ़ने जाएगा," पुरुषों की बातचीत में लड़की ने दखल दिया। "आप जानते हैं..."

फिर रुककर वह सही शब्द तलाशने लगी।

"आपे जानते हैं, जमाना बदलता है, अब किर लगाने वालों का जमाना लद गया। नये मकानों में अब किर इस्तेमाल में नहीं लाया जाता।"

बात तो सच है, वृद्ध सोच रहा था। अब नये मकानों में किर का इस्तेमाल नहीं होता।

लड़की ने निर्ममता से कहना जारी रखा।

"जैसी स्थिति आपकी है, वैसी रशीद की नहीं। रशीद जवान है। उसे भविष्य के बारे में सोचना है।"

हाँ, बेशक, उसे सोचना है...

"हालांकि सच कहूँ तो," लड़की की आवाज कहीं दूर से आती प्रतीत होती थी—"मैं जानती हूँ, रशीद के लिए आप पिता की तरह हैं। काफी समय तक तो रशीद आपको छोड़ने के लिए तैयार ही नहीं हो रहा था।"

वृद्ध ने सिर उठाकर लड़की की ओर भिन्न आँखों से देखा। यह वही लड़की थी जिसे वह तंग ओवरऑल और लाल फीते में देखता था ? इतनी छोटी लेकिन इतनी बहादुर।

फिर लड़की अपना और नौजवान का गिलास (वृद्ध ने अभी तक चाय नहीं पी थी) उठाकर रसोई में चली गई। जब वह लौटी, रशीद राहत की साँस लेकर उठ खड़ा हुआ। वृद्ध भी उठ खड़ा हुआ। वे पल भर को खामोश खड़े रहे। फिर रशीद के होंठों से वही पुराने शब्द फूट निकले।

"तो अगर आपको अब मेरी जरूरत नहीं..."

"हाँ-हाँ, जाओ..."

"अलविदा, उस्ता।"

"अलविदा। सदा खुश रहो।"

दरवाजे पर जब दोनों पहुँच गए, लड़की ने भावावेशवश बूढ़े के पास दौड़कर आते हुए उसे चूम लिया।

फिर वे चले गए। दरवाजे से धूप की सुनहली किरण आ रही थी। फिर दरवाजा बन्द हो गया और कमरे में हमेशा की तरह उदासीन अंधेरा छा गया।

वृद्ध दरवाजे के पास जैसे कोई बहुत जरूरी बात याद करता खड़ा था। फिर वह खिड़की के पास चला आया। लेकिन तब तक वे दोनों गायब हो चुके थे।

जैकेट के अन्दर हाथ डालकर उसने पाइप बाहर निकाला। हमेशा की तरह वह सावधान था, उसमें किसी तरह की हड़बड़ाहट न थी। फिर सिर पर टोप पहनकर वह बाहर निकल गया।

शान्त, तेज चाल से वह सार्वजनिक बगीचे की ओर चल पड़ा। यह जगह उसे बचपन से जानी-पहचानी थी। हर इतवार के दिन छवैये यहाँ जमा होते थे।

रवि रश्मियों से क्षितिज स्वर्णिम हो उठा था और अकादमी की विचित्र आलंकरण से सुसज्जित इमारत चमकने लगी थी।

चलते-चलते वह मन-ही-मन में उन घरों को गिनते भी जा रहा था जिन पर उसे आगामी हफ्ते में किर की लिपाई करनी होगी। वह जीवन के बारे में सोच रहा था—जीवन पुरातन किन्तु चिर नवीन है। वह जीवन के सीधे-सादे और बुद्धिमत्तापूर्ण नियमों के बारे में भी सोच रहा था।

बाग में एक पुरसुकून जगह

"साफ करो !" नवागन्तुक को कुर्सी पर बैठाते हुए अगासफ-अगा' दबंग आवाज में जोरों से बोले। "अपने" नाई की तवज्जह पाने के लिए इस अविचल ग्राहक ने पूरे दो घण्टे तक प्रतीक्षा की थी। "मुझे गत शुक्रवार को ही तुम्हारे आने की आशा थी," अगासफ-अगा ने कहा (वह अपने अविचल ग्राहकों को "तुम" कहकर ही बुलाते थे)। "मैं मन ही मन में सोच रहा था, बात क्या है ? वह है कहाँ ?"

"मैं काम से किरोवाबाद गया था।"

"किरीवाबाद में खाने को बड़ा अच्छा खाश" मिलता है, एकदम

लजीज," अगासफ-अगा ने स्वप्निल भाव से कहा। "पीला-पीला, चर्बीदार और पारदर्शी—मेमने की आँत भी काटकर डालते हैं। पूरे अजरबैजन में सिर्फ किरोवाबाद में ही खाश बनाना आता है...दर्द हो रहा है ? अब बाकू में खाने लायक तो कुछ मिलता ही नहीं। कुछ समय पहले मैंने स्टेशन के पास वाले कैफे में खाने के लिए खाश मंगवाया था। खाश तो खाने को मिल गया लेकिन मैंने मैनेजर से कहा—'तुम्हें शर्म आनी चाहिए ! यह भी खाश है, क्या ?' इसलिए मैं उस पर थूककर चला आया..."

"खाश घर पर बनाना चाहिए," ग्राहक बोला।

"लहसुन की गन्ध से ही मेरी बीवी के सिर में दर्द शुरू हो जाता है," अगासफ-अगा ने दुःख प्रकट किया। "बड़ी संवेदनशील है...शैम्पू कर दूँ ?"

अगासफ-अगा ने ग्राहक का सिर शॉवर के नीचे कर दिया। शैम्पू लगाने की तैयारी में उन्होंने बोतल को अच्छी तरह हिलाकर थोड़ा-सा तरल शैम्पू हथेली में ढालकर बड़े उल्लसित भाव से सूँघा।

नायलॉन का ब्रश सिर के झाग में घूता रहा। नाई ने कई बार घने बाल से झाग किया। वह अपने ग्राहकों के बाल हमेशा बड़ी लगन के साथ धोता था और धोते-धोते सन्तोषपूर्वक आह-ऊह करता जाता था।

"सेंक दूँ ! उस्तुरा !" एक बार फिर ग्राहक के कॉलर में तोलिया फँसाते हुए अगासफ-अगा बोले। झुककर वह ग्राहक के चेहरे को निहारने लगे। "अइ-अइ-प्य्या !" अगासफ-अगा ने कहा। "यहाँ पर तो बड़ा लाल हो गया है ?...तुम्हारी त्वचा बड़ी मुलायम और अच्छी है। दस हजार में एक आदमी की त्वचा ऐसी होती है लेकिन तुम अपनी त्वचा बिगाड़ देते हो...शायद तुम बिजली का शेवर काम में लाते हो। अब यही फैशन हो गया है लेकिन तुम देख लेना दो-तीन सालों में लोग फिर पुराने ढंग से ही दाढ़ी बनाने लगेंगे। दर्द तो नहीं हो रहा है ? मैं जानता हूँ, इससे दर्द नहीं होता है। मैं बस यूँ ही पूछ रहा था...कल मैं अखबर पढ़ रहा था...फिर केनेडी के बारे में लिखना शुरू कर दिया है। इतना समय बीत गया, फिर भी केनेडी के बारे में लिख रहे हैं...क्या तुम्हारे ख्याल से उन पत्रकारों को हर बार पैसे मिलते होंगे ? अं ? वे लिखें न लिखें मैं तो जानता हूँ कि उसकी हत्या किसने की। क्या ख्याल है तुम्हारा ? उसकी हत्या जनसन ने की थी ?"

"मैं तुम्हें बता सकता हूँ," झाग से भरे होंठों को सावधानी से हिलाते

हुए ग्राहक ने जवाब दिया—"लेकिन मुझे डर है, कहीं उसे जेल में न डाल दिया जाए।"

"किसको ? उसे कभी गिरफ्तार नहीं किया जाएगा, वह तो अब राष्ट्रपति है..." अगासफ-अगा ने तौलिये से उस्तरा पोंछा और दाढ़ी, बनाते-बनाते थोड़ी देर रुककर आराम किया। "जानते हो, मैं पहले कहाँ रहता था ? मैं पहले चेत्व्योर्ताया पैरालेलूनाया में रहता था। मोन्तिना में मुझे बाद में मकान मिला। तो मैं कह रहा था, वहाँ मेरे पड़ोस में दाऊद नामक एक आदमी रहता था। उसे पकड़कर तीन बार जेल में डाला गया। उसके रिश्तेदार इकट्ठे हुए और जबर्दस्ती पकड़कर मसजिद में ले गए। वहाँ हाथ में कुरान देकर उससे कसम खिलाई कि वह खोटे काम करना बन्द कर देगा। दाऊद ने कसम खा ली। और सच में वह बदल गया। एक छोटी-सी दुकान खोलकर वह मोची का काम करने लगा...तुम्हारी कनपटी की कलम कैसी रखूँ ? सीधी या कोणिक ? तुम चाहे जो कहो, सीधी कलम तुम्हें बड़ी अच्छी लगती है। सीधी रखूँ या कोणिक ? हाँ...सुबह से रात तक दाऊद जूतों की मरम्मत करता रहता। सब खुश...तभी एक दिन मैं काम से घर लौटते समय वहीं पर रुका। "दाऊद को गिरफ्तार कर लिया गया है," किसी ने बताया। क्या ? गिरफ्तार कर लिया ? किस लिए ? उसने किसी को चाकू मार दिया था। मुकद्दमा चला। पता चला कि किसी ग्राहक ने उसकी दुकान में आकर झगड़ा कर लिया था। दाऊद का कहना था कि ग्राहक ने जान-बूझकर झगड़ा किया था और ग्राहक का कहना था कि संयोगवश झगड़ा हो गया था। फैसले में दाऊद को तीन साल जेल की सजा मिली...समझते हो, आज या कल दाऊद जैसा आदमी जरूर कुछ करके रहेगा...अब वह जेल से छूटकर लौट आया है और जूते मरम्मत करता है लेकिन देर या सवेर वह जरूर कुछ कर गुजरेगा। दाऊद जैसे आदमी से अच्छे की आशा नहीं की जा सकती..." अगासफ-अगा ने कणित्र से यू-डी-कोलोन की पतली धार ग्राहक के चिकने चेहरे पर छिड़क दी। "मैं तुम्हें पावडर इस्तेमाल में लाने की सलाह नहीं दूँगा। त्वचा को थोड़ी खुली ही रहने दो।" और बिना देखे उन्होंने पैसे अपने अन्दरूनी कपड़े की जेब में ठूँस लिये।

"जरा जल्दी-जल्दी दर्शन दिया करो। मुझे तुम्हें देखकर बड़ी खुशी होती है।"

दरवाजे के पास पाँच या छः आदमी लाइन लगाकर बैठे थे। वे तौलिया हिलाकर दूसरे नाइयों द्वारा किए जा रहे संकेतों व "अगला ग्राहक !" की पुकारों पर कोई ध्यान नहीं दे रहे थे। वह लाइन अगासफ-अगा के स्थायी तथा धैर्यपूर्वक प्रतीक्षारत ग्राहकों की थी।

"अब पाँच या छह मिनट की छुट्टी रहेगी," लाइन की ओर देखते हुए अगासफ-अगा ने उल्लासपूर्वक घोषणा की। यह कहकर वह लाल मखमली पर्दे वाले दरवाजे के पीछे गायब हो गए और साथ के कमरे में चले आए। यहाँ एक कुर्सी पर बैठकर उन्होंने पैर उठाकर एक ऊँची-सी तख्ती पर रख लिये। वह तख्ती कील के सहारे इसी काम के लिए ठोकी गई थी। दो या दो से ज्यादा घण्टों तक काम करने के बाद उनके पैरों की नसें सूज जाती थीं। सूजे पैरों की नसों से खून को धड़ से लौटता महसूस करते हुए वह चुपचाप आनन्दपूर्वक निःश्वास छोड़ते रहे। उस समय वह आँखें मुश्किल से खोलकर नाराज हो उठे जब उनकी बगल वाली कुर्सी पर काम करने वाला नाई कमरे में घुस आया। वह एक नौजवान नाई था जो अभी कुछ ही दिनों पहले सेना से लौटा था। वह उसी इमारत में रहता था जिसमें अगासफ-अगा रहते थे ओर इसी कारण वह उस नौजवान को काम सिखाना व इस पेशे के गुर समझाना अपना कर्त्तव्य समझते थे।

"आज तुम मुझे तनिक रास नहीं आए, गजनफार," अपना सिर उसकी ओर मोड़े बिना अगासफ-अगा ने प्रभावशाली स्वर में कहा। "जब तुम उस डॉक्टर की दाढ़ी बना रहे थे, मेरा हृदय विदीर्ण हो उठा था...तुमने ध्यान ही नहीं दिया कि उसकी दाढ़ी बड़ी कड़ी है। ध्यान दिया था ? तुम्हें उसकी दाढ़ी पर एक बार साबुन लगाकर सेंकाई कर देना, फिर साबुन लगाकर दाढ़ी बनाना शुरू करना चाहिए था...जानते हो, जब तुम उसकी दाढ़ी बना रहे थे तो कैसी आवाज आ रही थी ? जैसी रेती को लोहे पर रगड़ते समय होती है। तुम्हारे ख्याल से यह ठीक है, क्या ? तुम्हारे लिए वह क्या है ? जानलेवा दुश्मन ? या वह तुम्हें खोटे सिक्के देता है ?"

"वह तो चुप था," झेंपते हुए गजनफार ने जवाब दिया। "उसने तो नहीं कहा कि उस्तरा उसे तंग कर रहा है..."

"वह कहेगा भी नहीं," अगासफ-अगा ने उसकी बात काट दी। "वह क्यों कुछ कहने लगा ? अगली बार वह दूसरे नाई के यहाँ चला जाएगा। वह

तुम्हारे पास नहीं आएगा। और जब मैं तुम्हारी उम्र का था तभी मेरे स्थायी ग्राहक बन चुके थे। तुम्हें भी इसी समय से इसके लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।"

"आपकी बात और है," गजनफार ने कहा। "आप में प्रतिभा है। बाकू का हरेक नाई यह जानता है। भगवान से मिली प्रतिभा है आप में।"

"नाई में सिर्फ एक ही प्रतिभा होनी चाहिए," मक्खनबाजी से प्रभावित अगासफ-अगा ने बेहद नाराजगी जाहिर करने वाले स्वर में कहा। "मेहनत व तवज्जह। अगर तुम्हें याद रहे कि किस ग्राहक को कौन-सा यू-डी-कोलोन खुश करता है और दाढ़ी बनाने के बाद उसे गर्म या ठण्डी सेंकाई पसन्द है तो वह ग्राहक सिर्फ तुम्हारी कुर्सी पर बैठने के लिए दो-दो घण्टे तक इन्तजार करने को तैयार रहेगा। मुख्य बात यह है कि ग्राहक को महसूस न हो कि तुम उसे जल्दी से निबटा देना चाहते हो। यह बेइज्जती है। फिर तुम्हें उससे बातचीत करनी चाहिए, पूछना चाहिए कि उस्तरे से उसे पीड़ा तो नहीं हो रही है...और तुम मुझे बता रहे हो—'मैंने उसकी दाढ़ी बनाई, उसने कुछ भी नहीं कहा।' शायद वह सकुचा गया हो..."

फिर दरवाजे के पास सम्मानपूर्वक खड़े गजनफार के करीब से गुजरकर अगासफ-अगा कमरे में चले आए जहाँ कुर्सी पर बैठा एक बीटलों-सी शक्ल-सूरत वाला नौजवान उनकी प्रतीक्षा में था।

"सिर्फ पीछे से थोड़ी छँटाई कर दो," उसने अगासफ-अगा से कहा—"और दाढ़ी भी बनवानी है।"

"और मूँछें ?"

"ठीक है," मन में अटकती किसी बात पर काबू पाते हुए उस नौजवान ने कहा—"होंठ पर लटकती मूँछों को आगे से थोड़ी-थोड़ी काट दो..."

अगासफ-अगा ने सिर हिला दिया और बड़े दिखावे के साथ काम शुरू किया। अगासफ-अगा के दो बार हाथ फेरते ही लड़के के चेहरे पर सन्तोष के भाव आ गए और वह बड़े आराम से कुर्सी पर पसर गया।

काम खत्म होने के बाद अगासफ-अगा और गजनफार आमतौर से नाई की दुकान से इकट्ठे ही घर रवाना होते थे। अच्छे मौसम में वे पैदल ही मेट्रो स्टेशन तक जाते थे। अगासफ-अगा ने पहली व आखिरी दफा

गजनफार को बता दिया था कि पैदल चलने से बहुमूत्र जैसी नाखुशगवार बीमारी से बचा जा सकता है।

"कल मैंने खाते-पीते, समृद्ध लोगों को दोराहे पर पैदल चलते देखा। क्या तुम सोचते हो उनके पास अपनी गाड़ियाँ नहीं ? उनके पास अपनी गाड़ियाँ भी हैं, दफ्तर की गाड़ियाँ भी हैं। फिर तुम्हारे ख्याल से वे शाम को पैदल क्यों चल रहे थे ? क्योंकि वे जीना चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि उन्हें बहुमूत्र की बीमारी हो या ऐसी कोई प्राणघातक बीमारी हो। बात समझने लायक है। ऐसे लोगों के पास सब कुछ है—पैसे हैं, मकान है, कार है लेकिन वे सेहतमन्द नहीं हैं।"

सम्मानपूर्वक उनकी बात सुनते हुए गजनफार ने सहमति में सिर हिला दिया। अगासफ-अगा के प्रति उसके दिल में अत्यन्त श्रद्धाभाव था।

वे दोनों स्टेशन के पास वाले एक छोटे-से कैफे के सामने रुके। अगासफ-अगा की राय थी कि चतुर आदमी को घर पहुँचने से पहले ही हमेशा खा-पी लेना चाहिए। "किसे मालूम कि घर पर कैसी परिस्थिति से सामना करना पड़ेगा," अगासफ-अगा ने कहा। "अगर बीवी ने अच्छा खाना बनाया होगा तो मैं शाश्लिक के बाद भी खा लूँगा। लेकिन अगर उसने शौहर के लिए कुछ भी न बनाया हो तो ?" गजनफार जानता था कि अगासफ-अगा को घर पर खाना न मिलने की ही सम्भावना ज्यादा थी।

दोनों कैफे के नीचे वाले कमरे में जा पहुँचे। काउण्टर के पीछे से आए बेयरे ने दोनों से सम्मानपूर्वक हाथ मिलाया।

"मैं आपको शाश्लिक खाने का सुझाव नहीं दूँगा," उसने धीमे-से अगासफ-अगा से कहा। "गोश्त थोड़ा कड़ा है। आज खिन्कल' ज्यादा अच्छा बना है..."

"दो खिन्कल," अगासफ-अगा ने कहा। "दो खिन्कल अभी ले आओ और दो गरम करके तैयार रखो। जब हम कहेंगे, ले आना। और मीना भर वोदका।"

दोनों ने स्वादिष्ट खिन्कल का एक-एक पोर्शन खाया और भर-भर दो गिलास वोदका पी। वोदका की कड़वाहट उन्होंने बीयर से दूर की। अगासफ-अगा का दावा था कि अगर वोदका या कोन्याक के बाद पानी या बीयर पीया जाए तो अन्ननली का कैंसर नहीं होता है। अगासफ-अगा को

थोड़ी बहुत डॉक्टरी जानकारी भी थी।

"मैं डॉक्टर बनना बहुत चाहता था," उन्होंने गजरफार को बताया। "लेकिन बाद में मैंने महसूस किया कि मैं एक दक्ष नाई हूँ। समझ रहे हो," नशे में आए अगासफ-अगा बोले। "मेरा पेशा बड़ा शानदार है। मैं दक्ष नाई अगासफ-अगा हूँ। मुझे हर कोई जानता है और मैं स्वयं अपना सम्मान करता हूँ। बाकी लोगों पर मैं कोई ध्यान नहीं देता।"

गजनफार जानता था कि "बाकी" से अगासफ-अगा का मतलब अपनी बीवी से है जिससे वह बहुत डरा करते थे।

गजनफार ने पैसे देने की कोशिश की लेकिन अगासफ-अगा ने उसकी ओर धमकाती निगाहों से देखकर बेयरे से कहा—"तुम्हें कितनी बार बताना पड़ेगा कि जब यह लड़का मेरे साथ हो, इससे पैसे नहीं लेना चाहिए। उन्होंने बेयरे के हाथों में पैसे थमा दिए। फिर भोजन व वोदका से आनन्दातिरेक महसूस करते हुए वह बाहर की ओर चल पड़े। बेयरे ने सम्मानपूर्वक उन्हें सहारा दे रखा था।

इमारत के अहाते में पहुँचकर अगासफ-अगा ने गजनफार को अपने कमरे में चलने के लिए आमन्त्रित किया। जब वह इनकार करने लगा अगासफ-अगा ने गुस्से से गुर्राकर कहा कि उसे अपने से बड़ों की बात माननी चाहिए और गजनफार नरम पड़कर उनके पीछे-पीछे तीसरी मंजिल पर चल पड़ा।

तीन कमरों वाले एक बड़े-से मकान में अगासफ-अगा अपनी बीवी व दो बच्चों—सामिद व फासिल के साथ रहते थे। मकान भली-भाँति व कीमती फर्नीचरों से सुसज्जित था। अगासफ-अगा ने खुद फर्नीचर चुन-चुनकर खरीदे थे।

चाबी से अगासफ-अगा ने दरवाजा खोला। वे भोजन वाले कमरे में चले आए। मेज साफ नहीं की गई थी। साफ पता लग रहा था कि अभी-अभी पाँच-छह लोगों ने इस पर खाना खाया था। किताबों वाली आलमारी के पास जाकर अगासफ-अगा ने अपनी नार्दी' निकाल लिया।

"आओ, देखें, तुम कैसा खेलते हो," उन्होंने गजनफार से कहा।

जब तक वह गोटियों को तख्ती पर लगाता रहा, अगासफ-अगा रसोई में जा पहुँचे।

"हमारे लिए चाय ले आओ," उन्होंने अपनी बीवी से कहा। "क्या मेहमान आए थे ?"

"स्कूल के सहकर्मी आए थे," बीवी ने जवाब दिया। "क्या तुम फिर नार्दी खेलने बैठ रहे हो ? बेकार का खेल !"

गजनफार जानता था कि अगासफ-अगा की बीवी तभी मेहमानों को आमन्त्रित करती थी जब वह घर पर नहीं होते थे। दरअसल वह उनकी मौजूदगी में परेशानी महसूस करती थी। उसने शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान से पत्राचार पाठ्यक्रम पास कर लिया था। जब वह पत्राचार पाठ्यक्रम की पढ़ाई में लगी थी, अगासफ-अगा घर का काम-काज एक लड़की से भाड़े पर करवाते और वह खुद बच्चों को लेकर पास के बगीचे में हर शाम को घूमने चले जाते थे। परीक्षा पास करने के तुरन्त बाद वह बहुत ही बदल गई थी। उसका लहजा ही बदल गया था; जब वह अपने पति से बात करती होती तब वह खास तौर से जाहिर होता था। वह अंग्रेजी पढ़ाती थी। गजनफार को यह बात आश्चर्यजनक लगती थी। वह अंग्रेजी पढ़ाती थी। गजनफार को यह बात आश्चर्यजनक लगती थी क्योंकि वह जबकि रूसी व अजरबैजानी गलत बोलती थी तो फिर अंग्रेजी कैसे सही बोल सकती थी। अगासफ-अगा के स्थायी ग्राहकों में से एक ने उसके लिए शहर के केन्द्र के एक स्कूल में काम का बन्दोबस्त कर दिया था।

गजनफार व अगासफ-अगा चुपचाप नार्दी खेल रहे थे। अगासफ-अगा घर पर आमतौर से चुपचाप ही रहते थे। उनकी बीवी दो गिलासों में चाय ले आई और खरखराती आवाज के साथ उन्हें मेज पर रखकर चली गई। अगासफ-अगा ने उसकी ओर घूरकर देखा लेकिन इस पर बिलकुल ही ध्यान दिए बिना उनकी बीवी दूसरे कमरे में जाकर फोन करने लगी।

"तुमने ठीक ही कहा," वह चोंगे में बोली, "बेशक, यह सील की खाल नहीं, रोयां दूसरा है, मेरे ख्याल में यह घोड़ी की खाल है..."

"हमारी चाय के लिए चीनी कौन लाएगा ?" आहत भरी स्वर में अगासफ-अगा चिल्लाकर बोले। "मैं अभी-अभी काम से लौटा हूँ !"

"क्या तुम्हें सुनाई नहीं देता कि फोन पर बात कर रही हूँ ?" भोजन वाले कमरे की ओर नजर डालते हुए उनकी बीवी ने कहा। "चीनी चाहिए तो खुद ले लो। मैं कोई जरखरीद नौकरानी नहीं !"

अगासफ-अगा ने पूरी शक्ति से मेज पर घूसा पटक दिया। तख्ती व गोटियाँ उछलकर लकड़ी के फर्श पर लुढ़क पड़ीं।

"यह किसका घर है ?" गुस्से से आग-बबूला होते हुए अगासफ-अगा चीखे। "तुम्हें मुझसे इस तरह बात करने की हिम्मत कैसे हुई ? मैं क्या चोर हूँ, हत्यारा हूँ ? मैं पूछ रहा हूँ, तुम मुझसे इस तरह क्यों बात कर रही हो ?"

गजनफार उठकर दबे पैरों पर कमरे से बाहर चला आया। पहली मंजिल से उतरते समय उसे सुनाई दिया—"मैं तुमसे हजार बार कह चुकी हूँ। उस नाई को हमारे घर में कदम रखने की कोई जरूरत नहीं। उसे यहाँ मत लाया करो !"

"यह तुम्हारा नहीं, मेरा घर है ! जिसे चाहूँगा, लाऊँगा।"

यह एक अजीबोगरीब रोज-रोज होने वाला झगड़ा था और जैसे शुरू हुआ था, उसी तरह एकाएक बन्द भी हो गया। अगासफ-अगा सोने के कमरे में गए और पाजामा पहनकर आराम से बिस्तरे पर लेट गए। वहाँ लेटे-लेटे वह सूजी नसों में खून की टपक महसूस करते रहे और यह उन्हें बड़ा ही आनन्ददायी लगा। जाने-पहचाने ढंग से व तेजी से उनके विचार प्रवाहित होने लगे। वह अपनी बीवी के बारे में सोच रहे थे और उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह किस बात पर नाराज है। "जैसे कि मैं इस इमारत में सबसे ज्यादा नहीं कमाता। मैं उसे सब कुछ देता हूँ। गर्मियों में किसलोवोद्स्क जाना चाहती हो ? तो जाओ। तीन महीने क्या चार महीने के लिए जाओ। अपनी सहकर्मियों को बुलाना चाहती हो ? बुला लो। चाहे तो हर दिन बुलाओ। उसके पास सब कुछ है। और उसे क्या चाहिए ? आदमी का क्या काम है ? अपनी आजीविका कमाना। इस इमारत में मुझसे ज्यादा कोई नहीं कमाता ! असल में सारी परेशानी की जड़ में उसका परिवार है—परलोक सिधारी उसकी माँ भी डायन थी। यही तो सारी दिक्कत है।"

इस ख्याल से अगासफ-अगा को मानसिक शान्ति महसूस हुई। दायीं करवट लेकर अगासफ-अगा सोने ही वाले थे कि उन्हें सामिद के हाथ का स्पर्श महसूस हुआ।

"क्या बात है, बेटे ?" अगासफ-अगा ने पूछा। उन्हें अपने बच्चों से बेहद प्यार था और उन्हें देखते ही उनका एकदम बिगड़ा मूड भी ठीक हो

जाता था।

"पापा," सामिद ने कहा, "मुझे कुछ पैसे चाहिए।"

"कितने ?" अगासफ-अगा ने पूछा।

"सच कहूँ तो पाँच रूबल," सामिद बोला। "लेकिन अगर आप तीन भी दे देंगे तो मेरा काम चल जाएगा।"

"तीन क्यों ?" बाप को हैरानी हुई। "मैं तुम्हें पाँच दूँगा।" जेब में हाथ डालकर उन्होंने पाँच का नोट निकालकर बेटे को थमा दिया। "तुम्हें किस लिए चाहिए ?"

"यूँ ही," सामिद बोला। "दरअसल हम एक सचमुच का फुटबाल खरीदना चाहते हैं।"

"और तुम आज क्यों इतना मुँह फुलाए हो ?" पास में ही चुपचाप खड़े आठ वर्षीय फाजिल से अगासफ-अगा ने कहा। "यह रहा एक रूबल तुम्हारे लिए। चाहो तो आइसक्रीम खरीदकर खा लो।"

"स्कूल के क्या समाचार हैं ?" सोने के लिए लेटते हुए अगासफ-अगा ने सामिद से पूछा।

"ठीक ही है !" सामिद ने उल्लसित होकर जवाब दिया।

"माँ कह रही थी कि किसी चीज में तुम्हें 'दो' मिला है विषय...मुझे नाम नहीं याद आ रहा है...त्रिको...या...

"त्रिकोणमिति," बेटा हँसकर बोला। "सब ठीक है, इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं, पापा।"

अगासफ-अगा इस हिदायती बातचीत को खत्म करके, दोनों लड़कों को चूमने के बाद सोने ही जा रहे थे कि बीवी कमरे में आ पहुँची।

"हम आज रात में सिनेमा देखने जा रहे हैं," उसने पति को बताया।

"किस शो में ?" अगासफ-अगा ने साँस रोककर पूछा।

"दस बजे वाले शो में।"

"तब तो अभी समय है," अगासफ-अगा को प्रसन्नता हुई। "मैं एक घण्टा सो लूँगा फिर हम चलेंगे। शुक्र है कि हॉल पास में ही है।"

"नहीं, नहीं !" बीवी बीच में ही बोल उठी। "काफी दूर है हम 'अजरबैजान' में जाएँगे। बस तुम अब उठ जाओ, दाढ़ी बनाकर तैयार हो जाओ।"

"जरा सोचो," अगासफ-अगा गिड़गिड़ाए। "मैं थका हूँ, मेरे पैरों में दर्द है। क्या हम छुट्टी के दिन सिनेमा नहीं जा सकते ?"

"मैं भी औरों की तरह देखना चाहती हूँ—पहले दिन।"

"मैं सिनेमा देखने नहीं जाऊँगा !" अगासफ-अगा चिल्ला पड़े। "मैं इसी मकान में मर जाऊँगा और तुम्हें मेरी परवाह तक नहीं होगी।"

"बहुत हुआ !" कमरे में घुसते हुए सामिद ने कहा। "मैं यह सब सुन-सुनकर आजिज आ गया हूँ। बन्दी कीजिए। पड़ोसी आप पर हँस रहे हैं..."

"देखते हो ?" अगासफ-अगा की बीवी ने बेटे से शिकायत की। "कुसूर मेरा है। मैं इस आदमी को जबर्दस्ती सिनेमा ले जाना चाहती हूँ ! यह मेरा ही कुसूर है कि तुम्हारे पिता नाई की दुकान में काम करते हैं। मेरा ही कुसूर है !"

सामिद निराशा से हाथ झटककर चला गया।

अगासफ-अगा ने अपना सबसे बढ़िया सूट पहना, नयी भूरी बरसाती पहनी। पारखी आँखों से उन्हें जाँचते हुए बीवी ने जूते बदलने के लिए कहा फिर उनसे कफलिंग बदलवाए। आखिर सन्तुष्ट हुई। कपड़ों की आलमारी से अपना कोट निकालकर उसने पति को पकड़े रहने के लिए दे दिया। इधर कुछ समय से वह जब भी घर से बाहर जाती थी, हर बार पति को कोट पहनने में मदद करने के लिए कहने लगी थी।

उन्हें अच्छी सीटें मिली थीं—वीथी की दसवीं कतार में। अगासफ-अगा भी खुश थे। बड़े सन्तोष से उन्होंने बीवी को देखा। उसने बहुत बढ़िया कपड़े पहन रखे थे—कानों में हीरे के झुमके थे, सुचिक्कण हाथों में हीरे-जड़ित कंगन थे, अंगुलियों में अंगुठियाँ थीं। वे नकली नहीं, असली हीरे थे। और असली होना भी चाहिए। अगासफ-अगा बीवी को कीमती चीजें देना पसन्द करते थे और उनकी कमाई भी इतनी थी कि वे हर साल दे सकते थे।

"निस्सन्देह, इस सिनेमा हॉल पर आकर हमने अच्छा ही किया। यहाँ ध्वनि बड़ी अच्छी है और दर्शक भी हमेशा अच्छे लोग होते हैं," अपनी सीटों की ओर बढ़ते हुए एक जोड़े की ओर इशारा करते हुए अगागसफ-अगा ने कहा।

"वह विज्ञान अकादमी का उपाध्यक्ष है," उन्होंने बीवी के कान में बुदबुदाकर कहा।

उपाध्यक्ष ने उनके पास से जाते हुए अगासफ-अगा का शालीनतापूर्वक अभिवादन किया।

"वह जनरल मामेरोव है," अपने एक अन्य परिचित से हाथ मिलाते हुए अगासफ-अगा ने कहा। पता चला कि वहाँ उनके अनेक परिचित थे और सबने उनका गर्मजोशी से अभिवादन किया।

"इन सब लोगों को तुम कहाँ से जानते हो ?" बीवी ने पूछा।

"मैं इन सबको जानता हूँ। सब मेरा आदर करते हैं।"

बीवी ने तिरस्कारपूर्वक अपने कन्धे उचका दिए।

फिल्म के शुरू होते ही अगासफ-अगा ने बीवी का कोट लेकर अपने हाथों में रख लिया जिससे कि वह आराम से फिल्म देख सके। फिर साथ में लाए दो आइसक्रीमों को दाँतों से चबा-चबाकर खाना शुरू कर दिया। वे अत्यन्त आनन्दमग्न थे, उनके पैरों में पीड़ा भी न थी, फिल्म दिलचस्प थी और आइसक्रीम उनके मुँह को शीतलता पहुँचा रहा था।

उनके पीछे बैठे कुछ लोग ठहाका लगाकर हँस पड़े।

"दाँत चलाना बन्द करो !" बीवी उनसे बुदबुदाकर बोली।

अगासफ-अगा ने चबा-चबाकर खाना तो बन्द कर दिया था लेकिन अब उनसे फिल्म नहीं देखी जा रही थी।

जब वे घर लौटे, बच्चे सो चुके थे। अगासफ-अगा उनके सोने के कमरे में चले गए। साँस रोके वह बच्चों को देखते रहे और हमेशा की तरह बच्चों को देखकर उनमें कोमलता की लहर-सी दौड़ गई। छोटे ने बिस्तर की चादरें पैर से मारकर नीचे गिरा दी थीं। अगासफ-अगा ने चादरें ओढ़ाकर दोनों को चूम लिया। फिर वह कमरे से बाहर आ गए। चूँकि नींद नहीं आ रही थी इसलिए अगासफ-अगा बरसाती पहनकर बाहर सड़क पर चले आए।

अपनी इमारत के सामने वाले चौक में अगासफ-अगा चिरपरिचित जगह पर जा बैठे। बीवी से झगड़ा होने के बाद वह आमतौर से यहीं आकर बैठ जाते थे। पास वाली बेंच पर एक नौजवान जोड़ा बैठा-बैठा चूमा-चाटी कर रहा था; उन्हें इस बात में कोई दिलचस्पी न थी कि पास में बैठे

अगासफ-अगा पर इस चूमा-चाटी का क्या असर होगा। बड़ी झिझक महसूस करते हुए अगासफ-अगा लड़की के नंगे घुटनों व कूल्हों से नजरें बचाने की कोशिश कर रहे थे। लड़की का फ्राक छोटा-सा था और अगासफ-अगा का मन हुआ कि जाकर लड़के से कहें—"सुनो, तुम्हारी प्रेमिका का फ्राक बहुत छोटा है।" लेकिन शायद वह बुरा मान जाएगा और यह सोचकर उन्होंने इरादा बदल दिया।

"अभी तो चूमा-चाटी कर रहे हैं," अचानक मन में पैदा हुई कड़वाहट के साथ अगसाफ-अगा ने सोचा। "देखूँगा, विवाह के बाद क्या होता है, चौक में बैठकर दोनों चूमा-चाटी करते हैं या नहीं। मैं भी लड़कियों के चुम्बन लिया करता था," और अगासफ-अगा अपनी बीवी के बारे में सोचकर बहुत दुखी हो उठे।

इसी समय गजनफार उनकी बगल में आकर बैठ गया। अगासफ-अगा उसे देखकर प्रसन्न हो उठे।

"नींद नहीं आई ?" गजनफार ने पूछा।

"उसकी बात का बुरा मत मानो," अगासफ-अगा बोले। "वह बुरी नहीं, सिर्फ गर्म मिजाज है।"

"मैंने बुरा नहीं माना है," गजनफार ने कहा। "मुझे आपके लिए खेद है। माफ कीजिए लेकिन आप इतने दक्ष नाई हैं कि सारा शहर आपको जानता है। सभी आपका आदर करते हैं। यूँ तो आप नेकदिल भी हैं लेकिन इस मकान में रहने वाले सभी लोगों में आपका जीवन सबसे खराब है। वह आपका आदर नहीं करती है, दूसरों के सामने आप पर चीखती-चिल्लाती है। जरा सोचिए—उसने संस्थान की परीक्षा पास की। आपके पैसों से। आपके बिना उसकी हैसियत ही क्या है !"

गजनफार की हिमाकत से अगागसफ-अगा पल भर के लिए हक्का-बक्का रह गए।

"सुनो, यह मत भूलो कि तुम किससे बात कर रहे हो...कसम खाकर कहता हूँ, अगर मैं तुम्हें अपने बेटे की तरह नहीं मानता तो कभी इस बात के लिए माफ न करता...अभी तुम नौजवान हो, तुम्हारी समझ में यह बात नहीं आती। बीवी का मतलब कुछ भी नहीं होता है। जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण हैं बच्चे। मेरे दो बेटे हैं...वे बड़े होकर मेरे मित्र बन जाएँगे। वे

सारी बातें समझने के लायक बन जाएँगे, वे मुझसे स्नेह करेंगे और हर बात में सलाह लेंगे। अभी वे मेरी अपेक्षा माँ के अधिक निकट हैं। यह स्वाभाविक ही है। वह उनका लालन-पालन करती है। लेकिन जब वे बड़े हो जाएँगे...समझे ?''

गजनफार ने अविश्वासपूर्वक कन्धे उचका दिए।

''तुम मेरा विश्वास करो...मैं सब कुछ उन्हीं लोगों की खातिर सह रहा हूँ...''

''जिन्दगी तो रुकी नहीं रहेगी...'' गजनफार बोला।

''जिन्दगी अभी भी बाकी है...ओह, हाँ। देर हो चुकी है। चलो, घर चलें। कल हमें जल्दी उठना है।''

पल भर के लिए चूमा-चाटी बन्द करके पास वाली बेंच पर बैठा जोड़ा दोनों दोस्तों को जाते देखते रहा।

हमेशा की तरह अगासफ-अगा सुबह में घर के बाकी लोगों से पहले जाग गए। चुपचाप रसोई में जाकर उन्होंने नियमपूर्वक व्यायाम किया। बड़े बेटे के दो पौण्ड वाले बारबेलों से भी थोड़ी कसरत की। फिर डबलरोटी के कुछ टुकड़ों को सेंककर उन्होंने कड़ी असली लंका की चाय तैयार की। बैठकर अच्छी तरह नाश्ता किया। कपड़े पहन चुके अगासफ-अगा सोने वाले कमरे में जा पहुँचे। उनकी बीवी अभी-अभी जागी थी।

''तुम्हें मालूम है, आज सामिद का सोलहवाँ जन्म-दिन है ?''

''अय-अय-अय,'' अगासफ-अगा बोले और बच्चों के सोने के कमरे में चले आए। ''मुबारक हो ! तुम सुखी और बुद्धिमान बनो जिससे कि तुम्हें देखकर मुझे खुशी हो। क्या तुम्हारे साथी आएँगे ?''

सामिद ने सिर हिला दिया।

''बहुत अच्छे। अच्छे आदमी के हमेशा काफी सारे साथी होते हैं। हमारे घर में सबका स्वागत है।''

अहाते में जब सीढ़ियों से उतरकर अगासफ-अगा पहुँचे, वह बहुत प्रसन्न थे। गजनफार बाहर खड़ा उनकी प्रतीक्षा कर रहा था।

चलते-चलते अगासफ-अगा ने हर्षातिरेकपूर्वक कहा—''लगता है तुम्हें जीवन का कोई ज्ञान नहीं...सुनो, इससे क्या फर्क पड़ता है कि मेरी बीवी मेरा आदर करती है या नहीं...मैं अपने शानदार बच्चों के अलावा किसी की

रत्ती भर भी परवाह नहीं करता हूँ...बच्चे जो मेरे भावी मित्र हैं। यह बात मुख्य है। क्या तुम्हारी बीवी तुम्हारा आदर करती है ?''

''हाँ,'' गजनफार बोला। ''और वह मेरा आदर जीवन भर करती रहेगी। मैं उसके लिए दुनिया में सबसे महत्त्वपूर्ण आदमी हूँ...''

तरस खाते हुए अगासफ-अगा ने उसकी ओर घूरकर देखा और हँसते हुए कहा, ''बच्चे हो ! एकदम बच्चे !''

दोपहर की छुट्टी के समय अगासफ-अगा कैफे में खाना खाने नहीं गए। अपनी छुट्टी का इस्तेमाल उन्होंने शैम्पेन की छह बोतलें खरीदने में किया। गजनफार का घर से लाया गया खाना उन दोनों के लिए काफी साबित हुआ। कर्मचारियों के लिए निर्धारित कमरे में बैठकर दोनों ने स्वाद ले-लेकर डोल्मा' खाया और साथ में मत्सोनी'' पी। मत्सोनी की बातले गजनफार ने एक छोटे-से सूटकेस से निकाली थी।

''क्या तुम्हारी बीवी हर दिन ऐसा खाना बनाती है ?'' अगासफ-अगा ने पूछा।

गर्व के साथ गजनफार ने सिर हिला दिया।

''खाना अच्छा बनाती है,'' अगासफ-अगा बोले। ''ध्यान रखो, नहीं तो मोटे हो जाओगे। हाँ, तो अब काम का समय हो गया शुक्रिया।''

अगासफ-अगा लगभग हर ग्राहक से बता रहे थे कि आज उनके बड़े लड़के का सोलहवाँ जन्म-दिन है, पूरी क्लास जन्म-दिन मनाने आएगी और यह कि पहले तो शराब खरीदने की उनकी इच्छा न थी लेकिन फिर सोचा कि एक-एक गिलास शैम्पने पीने में क्या हर्ज है। ग्राहकों ने उन्हें बधाई दी और कहा कि एक-एक गिलास शैम्पेन पीने से कोई नुकसान नहीं होगा।

''उसकी क्लास में अच्छे बच्चे हैं, अच्छे-अच्छे परिवारों के। सब-के-सब आज हमारे घर आ रहे हैं,'' नाई की दुकान में सब किसी को अगासफ-अगा ने बता दिया।

रेडियो पर जेइनब खानलारोवा का एक कंसर्ट एलान किया गया। बातचीत थम गई। कंसर्ट के समय नाईखाने में बातचीत आमतौर पर बन्द की जाती थी।

"आह कितना अच्छा गाती है !" अगासफ-अगा ने आह भरी। जब वह तेसनिफ" गा रही थी तो उनकी आँखें तक उमड़ आईं। अगासफ-अगा प्रकृति से भावुक आदमी थे। "कौन जानता है, उसकी शादी हुई है या नहीं ?" उन्होंने पूछा।

नाईखाने में किसी को मालूम न था।

"उसकी शादी हुई है या नहीं, इससे आपको क्या ?" एक ग्राहक ने पूछा।

"मैं उसके लिए अच्छे बच्चों की दुआ करना चाहता हूँ। वह लोगों को गीत सुनाकर सुख पहुँचाती है। उसे भी सुखी होना चाहिए।"

इसके साथ ही कला के बारे में बातचीत खत्म हो गई। घड़ी की ओर देखकर अगासफ-अगा अपना काम जल्दी-जल्दी निबटाने लगे। वह बेसब्री से गजनफार की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक मोटे कर्नल की दाढ़ी बनाकर वह भी बाहर आ गया।

बाकू में वसन्त के शीघ्रागमन का संकेत मिलने लगा था। झुटपुटा हो आया था। शाम की हवा में बबूल की उड़ती बू व्याप्त थी। शैम्पेन की बोतलों वाला झोला गजनफार को पकड़ाकर अगासफ-अगा आनन्दपूर्वक हवा सूँघते धीमे-धीमे चल रहे थे।

"आदमी को ज्यादा कुछ नहीं चाहिए," उन्होंने गजनफार से कहा। "अगर घर पर सब लोग स्वस्थ हों तो बाकी चीजें उतनी अहम नहीं।देखो, वसन्त फिर यहाँ आ गया है। पता नहीं और कितने वसन्त आएँगे।"

अहाते में पहुँचकर गजनफार ने अगासफ-अगा को बेटे के जन्मदिन पर बधाई दी।

"शुक्रिया," अगासफ-अगा ने कहा। "भगवान करे कि हम तुम्हारे बेटे की सेहत का जाम पीएँ। अब तुम्हें भी बाप बनना ही चाहिए।"

चाबी से दरवाजा खोलकर अगासफ-अगा घर के अन्दर जा पहुँचे। मेहमानों के स्वागत के लिए खाने वाले कमरे को साफ-सुथरा करके हर चीज ठीक ढंग से सजा दी गई थी। रसोई में सामिद चीनी फेंट रहा था। बीवी अंगीठी के पास काम में व्यस्त थी।

"मैं क्यों तुम्हारे पिता से कहने लगी ? तुम खुद बड़े हो चुके हो। खुद कहो। इसमें कोई गलत बात नहीं।"

"बात क्या है ?" अगासफ-अगा ने पूछा।

"कुछ भी नहीं," बीवी बोली।

अगासफ-अगा ने रसोई में खाना खाया। पुलाव बड़ा अच्छा बना था। उनकी बीवी ने बेटे के जन्म-दिन पर खासतौर से बनाया था। बड़े अच्छे ढंग से बनाया गया; चावल का एक-एक दाना अलग-अलग था; पुलाव चर्बी से तो तर था ही, ऊपर से पीली-पीली हल्दी भी छिड़की गई थी। आधा गिलास कोन्याक डालकर अगासफ-अगा ने बेटे व परिवार की खुशी के लिए पी।

"मेहमानों के आने तक मैं सो रहता हूँ," उन्होंनें तय किया। जब वह कमरे में पहुँचे तो देखा कि वहाँ से बिस्तर नदारद थे।

"बच्चे यहाँ डाँस करेंगे। बिस्तरे हमने बच्चों के कमरे में रख दिए हैं," बीवी बोली। "सुनो, सामिद तुमसे कुछ कहना चाहता है लेकिन झेंपता है..."

"झेंपता क्यों है ?" अगासफ-अगा ने कहा। "हमें एक-दूसरे को कोई भी बात बताने में लजाना नहीं चाहिएं बेटे, तुम क्या कहना चाहते हो ?"

"पापा, बात यह है कि मैंने पूरी क्लास को बुला लिया है—आप ही ने कहा था न...लड़कों को भी, लड़कियों को भी...लेकिन उन्हें आपके सामने शर्म आती है। क्या आप बारह बजे तक कहीं जा नहीं सकते...आप बुरा न मानें..."

"इसमें बुरा मानने की कोई बात ही नहीं," माँ बोली। "मैं भी सबको खिलाकर रसोई में या पड़ोसियों के यहाँ चली जाऊँगी...सब यही करते हैं...इमसें बुरा मानने की कोई बात नहीं..."

"आप लोग मुझे क्या सिखाना चाहते हैं ?" अगासफ-अगा बोले। "मैं खुद समझता हूँ। मैं तुम्हारे मेहमानों के लिए परेशानी का कारण नहीं बनूँगा। तुम्हारी अपनी पसन्द-नापसन्द हैं, मेरी अपनी। और फिर मैं घूमने के लिए तो जाना ही चाहता था..."

इमरात के सामने वाला बगीचा नियॅन बत्तियों से रोशन था। वसन्त की खुशगवार बयार चल रही थी, यह वसन्त की वही बयार थी जो कवियों को कविताएँ लिखने को बाध्य कर देती है चाहे अच्छी हो या बुरी। अगासफ-अगा

अपनी चिरपरिचित जगह पर जा बैठे। वहाँ बैठकर बच्चों को खेलते देखना आनन्ददायी था। थोड़ी देर बाद बच्चे चले गए और जवान जोड़े आने लगे। वे आमतौर से चूमाचाटी में ही लगे रहते थे। सिफ वही बेंच खली थी जहाँ पर अगासफ-अगा बैठे थे। किसी भी आदमी ने इस भारी-भरकम, सूजे चेहरे व उदासीन भाव मुद्रा वाले घरेलू जैसे व्यक्ति की ओर कोई ध्यान नहीं दिया...या शायद बात अगासफ-अगा के रंग-रूप में नहीं थी...वसन्त में ज्यादातर लोग अपने आप में ही मस्त रहते हैं...

फिर गजनफार आ पहुँचा। वह बोला कुछ भी नहीं, चुपचाप आकर अपने मित्र की बगल में बैठ गया। लेकिन अगर कोई ध्यान से देखता तो पाता कि दोनों आदमी एक-दूसरे का संग पाकर कितने आनन्दित हो उठे...लेकिन जरा आप ही बताइए, वसन्त की ऐसी शानदार शाम में किसको दूसरे की ओर देखने की जरूरत पड़ी है ?

"मैं बहुत खुश हूँ," अगासफ-अगा बोले। "आज मेरे बेटे का सोलहवाँ जन्म-दिन है...भगवान करे कि तुम्हें भी यह खुशनसीबी हासिल हो...जानते हो, सागर तट पर पिरशागी में मेरी थोड़ी-सी जमीन है। कई वर्षों से मैं वहाँ पर एक मकान बनवाने का सपना देखता आया हूँ। मैं कसम खाकर कहता हूँ, अगले कुछ वर्षों में बना डालूँगा। तुम आना और देखना...मेरे बेटे बड़े हो जाएँगे और हम साथ-साथ शिकार खेलेंगे, मछली पकड़ेंगे। हर रात मैं बेटों के साथ बैठकर जीवन व राजनीति के बारे में बातें किया करूँगा...तुम तो जानते ही हो, मुझे राजनीति के बारे में बातचीत कितनी पसन्द है...और हर रात हमारे यहाँ मेज पर मेहमानों की भीड़ हमेगी...और हम, हमारे बेटे सबसे मीठी-मीठी बातें करेंगे, सबके लिए रोटी का टुकड़ा होगा और सोने को मुलायम बिस्तरा...' अगासफ-अगा बोलते ही बोलते गए। गजनफार सुन रहा था लेकिन कुछ टोक नहीं रहा था क्योंकि वह महसूस कर रहा था कि अगासफ-अगा को अपनी बातों पर दृढ़ विश्वास है और किसी के विश्वास को तोड़ना नहीं चाहिए क्योंकि यह सचमुच का एक पाप है।

सागर तट पर एक बंगला

उसे सुबह आठ बजे मश्तागी पहुँचना था और भाड़े पर एक मजदूर साथ लेकर उसे बिलगया में बन रहे बंगले पर पहुँचाना था।

"मैं यह काम क्यों करूँ ?" पतलून पहनते हुए वह सोच रहा था। "और फिर इसमें तुक ही क्या है ?"

वह तीस साल का हो चुका था। आर्थिक प्रबन्ध की प्रणालियों में स्थायित्व के सिद्धान्त की कुछ पद्धतियों को क्रियान्वित करने की सम्भावनाओं के सम्बन्ध में उसे एक लेख सोमवार तक पूरा करना था। पिछले कुछ वर्षों में उसने अपने अविवाहितों के फ्लैट में एक कील तक ठोकने की जहमत

नहीं उठाई थी और इसलिए अब मश्तागी जाकर माँ के घर की छत डालने के लिए एक मजदूर ढूँढ़ लाने की बात उसे बड़ी अन्यायपूर्णलग रही थी।

मोटी, थुलथुली, क्षीण साँसों वाली उसकी माँ को इंजीनियर का डिप्लोमा मिला था और वह अशक्त होने के कारण पेंशन पा रही थी—उसके सीने में दर्द रहता था और पैरों में भी बीमारी ने घर कर रखा था। अचानक उसे 'जमीन के एक टुकड़े' की जरूरत महसूस हुई थी जिसकी जुताई-बुवाई वह खुद करना चाहती थी। इससे पहले जमीन की लालसा उसमें कभी भी न थी; किसी चुस्त व कामकाजी आदमी की तरह वह किसी भी संस्थान का आर्थिक दायित्व सँभालने में समर्थ थी, किसी और काम के लिए उसके पास कभी वक्त नहीं होता था।

लेकिन तभी अचानक ही एक दिन उसने अपना फैसला सबको सुना दिया, वह अपनी ख्वाहिश पूरी करने में इस तरह पिल पड़ी थी कि लगता था, वह ख्वाहिश जीवन भर से उसके दिल में बसी रही थी। निस्सन्देह, इसका श्रेय उसे मिलना चाहिए कि जीवन के आरम्भ काल में वह अपना उत्साह बच्चों में पैदा करने में सफल रही थी। उस समय वे सब इकट्ठे बाकू के चौथे पैरालेल सड़क के एक पुराने-से फ्लैट में रहते थे। फ्लैट पुराना लेकिन काफी अच्छा था। इसकी एक खिड़की से पास-पड़ोस का किर छत वाला मकान दिखाई देता था। उसमें एक दरारदार लकड़ी की बॉलकनी थी। एक मुलबैक पियानो था और लम्बे कॉरीडोर जितना ही लम्बा विश्व मानचित्र वहाँ टँगा रहता था। तब वह 27 साल का था और उसका बड़ा भाई—जो एक प्रसिद्ध यूरोलाजिस्ट बन चुका था—30 साल का था।

माँ विक्षुब्ध तथा कृत-संकल्प घर लौटी थी। विश्व मानचित्र के नीचे लकड़ी के एक बक्से पर बैठकर दम लिये बिना वह गाँव में बंगला बनाने का अपना फैसला सुनाने लगी। बीच-बीच में उठती तेज खाँसी उसके बोलने में बाधा डाल रही थी।

उसके बाद कई हफ्तों तक जब वह अभी ऐसे खरीद-फरोख्त के लिए जिम्मेदार ट्रस्ट के जरिए अप्शेरोन प्रायद्वीप में जमीन का टुकड़ा पाने के लिए कोशिश ही कर रही थी, उनके रोजमर्रे के पारिवारिक वार्तालाप में "बरामदा व अंगूर की बगिया वाले छोटे-से आरामदेह बंगले" की चर्चा लगभग स्थायी-सी हो गई। अपने-अपने काम पर जाने से पहले सुबह में और शाम

को भोजन के बाद परिवार में सागर तट वाले घर के बारे में ही सब अपनी-अपनी बातें कहते। माँ घर के निर्माण के बारे में एक-एक बात विस्तार से बताती, घर के अहाते में एक कुआँ होगा जिसमें मोटर लगाई जाएगी, चूजों के लिए मुर्गीखाना बनाया जाएगा। आपस में घर के लिए शुरू से आखिर तक की डिजाइन तैयार की जाती और हम सपने देखते कि गर्मी के एक तेज उमसते दिन हम वहाँ पहुँचेंगे और एक-एक मुर्गी खाकर जल्दी-जल्दी समुद्र के किनारे दौड़ पड़ेंगे।

लेकिन जब गर्मी आ गई, यह स्पष्ट हो गया कि गाँव में बंगले का निर्माण उनके परिवार के लिए मात्र थोथी कल्पना ही थी। परिवार के लोगों ने अपनी शक्ति का अनुमान बहुत बढ़-चढ़कर लगाया था—इसके अलावा कि बंगला बनाने की उनकी जानकारी बहुत थोड़ी थी, यह भी सिद्ध हो गया कि माँ के अलावा इस काम पर समय लगाने वाला भी कोई न था। सबके सब अपने-अपने कामों में ही फँसकर रह जाते थे। इस योजना से सबसे पहले अपना पल्ला बड़े भाई ने झाड़ लिया था। यह तब हुआ जब अधिकांश पत्थर व सीमेण्ट जमीन के टुकड़े तक पहुँचाया जा चुका था।

जमीन से लगभग 300 मीटर की दूरी पर पत्थर ढोने वाली दूसरी ट्रक बालू में फँस गई। जलती धूप में कई घण्टों की कोशिशों के बाद ट्रक किसी तरह निकाली जा सकी। फिर बिना अराम किए जिससे कि रात होने से पहले काम निबटा लिया जाए, सबके सब पत्थरों के टुकड़े निर्माण-स्थली तक ढोते रहे। चूँकि अधिक उठा ले जाना असम्भव था, इसलिए हर आदमी पत्थर के दो-दो टुकड़े ढो रहा था। पैरों को झुलसाती बालू में रख-रखकर पसीने से तरबतर हम पत्थर ढो रहे थे। क्षीण साँस तथा सीने में दर्द से पीड़ित माँ भी काम करने से बाज नहीं आई थी। उसके पास जितनी ताकत थी, उसकी के मुताबिक एक पत्थर उठाकर वह धीमी-धीमी चाल से निर्माण-स्थली की ओर चल पड़ती लेकिन क्या मजाल कि कोई उसे काम करने से मना कर सके। कभी-कभी तो वह थककर बालू में भहराकर बैठ जाती थी और जारों से हाँफने लगती थी...

इसी दिन बड़े भाई ने घोषणा कर दी थी कि अपने शोध-प्रबन्ध में कई हफ्तों तक व्यस्त रहने के कारण वह निर्माण-स्थली पर नहीं आ सकेंगे।

माँ उस रात खूब रोई थी—वह कुछ दूर पर अपने पिता के साथ लेटा

माँ की कम्बल के कारण दबी-दबी सुबकियाँ सुनता रहा था लेकिन सुबह में कुछ बोले बिना पत्थर के दो टुकड़े उठाकर वह निर्माण-स्थली की ओर चल पड़ी थी...

और दूसरे दिन पास में ही रहने वाले एक बूढ़े पत्थर का काम करने वाले मिस्तरी को भाड़े पर रखकर उसने निर्माण शुरू करा दिया था। बूढ़े का 12 वर्षीय पोता गधे पर पानी व पत्थर ढो-ढोकर ला रहा था, सीमेण्ट खुद माँ मिलाती थी, मिस्तरी पत्थरों को जोड़-जोड़कर दीवार खड़ी कर रहा था और पेशे से दार्शनिक पिताजी उनके लिए खाना बना रहे थे। पिताजी इसके अलावा और किसी भी तरह निर्माण के काम में मदद कर पाने में असमर्थ थे—न तो तन से, न मन से वे इसके उपयुक्त थे।

कभी पैसों की कमी के कारण, कभी निर्माण सामग्रियों की कमी के कारण और उससे भी ज्यादा खराब सड़क के कारण निर्माण का काम लगातार रुक-रुककर धीमी गति से आगे बढ़ता रहा—जमीन के टुकड़े के गिर्द एक बाड़ा डाल दिया गया, कुआँ खोद दिया गया जिसमें दिन भर में कुछेक बाल्टियाँ पानी जमा हो जाता था और दीवारें खड़ी कर दी गई थीं...

और अब मंसूर को—दादाजी के सम्मान में उसे यही नाम दिया गया था—8 बजे तक मश्तागी पहुँचना था और भोड़े पर एक मजदूर लेकर छत डालने के लिए यहाँ वापस लौट आना था...

पतलून पहनने के बाद मेज के पास जाकर उसने अपने कल के लिखे लेख का आखिरी वाक्य पढ़ा। उसे वाक्य बड़ा ही नापसन्द आया। "यह काम मैं ही क्यों करूँ ?" अपने दिन के कार्यक्रम के बारे में सोचकर वह फिर दुखी हो उठा। सात बजने वाला था। दाढ़ी बनाने के लिए सिर्फ दस मिनट बच रहे थे।

बाथरूम से हाथ वाला आईना लाकर वह खिड़की के पास बैठ गया और शेवर का प्लग लगाते-लगाते उसने अनगिनत बार पहले की तरह ही आज भी कसम खाई कि कल जरूर दीवार वाला शीशा खरीद लाएगा।

दाढ़ी बनाने के बाद मंसूर ने बड़े भाई को फोन किया कि दो बजे तक वह उसकी प्रतीक्षा करे। बड़ा भाई, निस्सन्देह, उस समय तक सो रहा था।

"मैं मजदूर को वहाँ पहुँचाकर फौरन लौट आऊँगा। मैं इन सारे लाम-काफ से आजिज आ गया हूँ..." मंसूर ने अपने भाई से कहा और

जमीन पर चल रहे काम के बारे में बताया। भाई की इस बात से भी उसने सहमति जतायी कि माँ अपने खराब स्वास्थ्य के कारण वहाँ अकेली नहीं रह पाएगी और पिताजी पर निर्भर करना बेकार ही था—एक बार वह शहर आ गए तो उन्हें दुबारा उस बंगले तक लौट ले जाने में हफ्ता भर से कम समय नहीं लगेगा।

"पूरी तरह से समय व ताकत की बर्बादी है," भाई ने थोड़े में कहा। "उस बंगले के लिए इतनी अधिक मुसीबतें उठाई जा रही हैं और आखिर में होगा यह कि वह वहाँ रह भी नहीं पाएगी...

फोन रखकर मंसूर सोचने लगा कि उसका भाई कितना खुशकिस्मत था; उसने हर चीज से पीण्ड छुड़ा लिया था। निर्माण-स्थली से उसके भाग खड़े होने के बावजूद माँ की नाराजगी थोड़े समय बाद ही बड़ी तेजी से खत्म हो गई थी; वह कभी-कभी दिन खत्म होने के समय पाँच मिनट के लिए वहाँ चला आता था और बेकार की छोटी-मोटी चीजें उपहार में देकर, माँ की चुम्मी लेकर अपनी बेहिसाब व्यस्तता का रोना रो देता था, फिर शहर चला आता था। बेशक, उसे अपना पल्ला झाड़ लेना बड़ी अच्छी तरह आता था !

मंसूर ने मश्तागी की यात्रा बस से तय की। उसे मजदूर ढूँढ़ने में कोई दिक्कत नहीं हुई।

धूप उसे एक ओर से जलाये डाल रही थी, सीधे कान में घुसी जा रही थीं मजदूर उसकी बगल में लम्बे-लम्बे डग भरता, अनोखे ढंग से ऊपर-नीचे उछलता और रुक-रुककर जूते से बालू निकालता चल रहा था। धूल के कारण उसके जूते का रंग सफेद हो गया था। रुककर मंसूर उसके साथ आने की प्रतीक्षा करने लगता। मजदूर के छोटे-छोटे चौड़े पैरों की अंगुलियों के बड़े-बड़े नाखून मोटे व एकदम चौकोर-से थे और उनका रंग मंसूर के चश्मे के काले सींग के फ्रेम से मिलता-जुलता था।

मंसूर को अपने काम-काज की चिन्ता थी। उसे हर हालत में दो बजे तक शहर लौट जाना था। उसका भाई कुछ दोस्तों के साथ सत्तारजादे के घर जाने वाला था। सत्तारजादे काफी समय से उसे अपनी नवीनतम कृति देने का वायदा करता आ रहा था। उसके भाई की पेंटिंग में कोई दिलचस्पी न थी और मंसूर उसके साथ पहुँचकर वहीं पर सत्तारजादे को उसके वायदे के बारे में याद दिलाना चाहता था। नहीं तो वह खुद अपना वायदा कभी याद

नहीं करेगा और फिर इस कलाकार से एक कृति पाने का अवसर भी दुबारा हाथ आने वाला न था...

जब वे दोनों पहुँचे, माँ अंगूर की बगिया की चारों ओर से खुदाई कर रही थी।

"अच्छा, तो आ गए," पारखी नजरों से मजदूर का जायजा लेते हुए वह कुछ रुखे स्वर में बोली; जाहिरी तौर पर वह फिर मूड में नहीं थी।

लकड़ी के बनाए सायबान में लेटे-लेटे पिताजी कोई किताब पढ़ रहे थे। अगर दूसरी किताब पास में न हो तो पिताजी में एक ही किताब को कई बार पढ़ने की क्षमता थी। छोटे कद-काठी के दुबले-पतले आदमी ने अपनी बीवी के सामने पूर्ण आत्मसमर्पण करके भुला दिया था कि उसका कभी कोई स्वतन्त्र अस्तित्व भी था लेकिन एक मामले में वह भी अनम्य रहे थे—उन्हें यहाँ काम करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता था। उन्होंने अपने जिम्मे एकमात्र काम खाना बनाने व बर्तन धोने का लिया था।

सायबान के दो लोहे के पलंगों में से एक पर थक मंसूर गिरकर कराह उठा। यहाँ छाया में पहुँचकर ही उसे महसूस हुआ था कि धूप में मश्तागी से बिलगया तक की यात्रा ने उसे कितना थका दिया था।

माँ मजदूर के साथ छत पर चढ़ चुकी थी।

"पहले तुम इन्हें छाजो," माँ ने अड़ियल ढंग से मजदूर को समझाया, मजदूरों के साथ वह इसी तरह पेश आती थी। "फिर इसके ऊपर कोलतार लगा नमदा डालो। कील से इन्हें अच्छी तरह ठोक दो। ऊपर से सीमेण्ट लगा दो। समझ गए ?"

"क्यों नहीं समझा ? इसमें समझने में क्या दिक्कत है ? कोई मैं पहली बार थोड़े ही ऐसी छत डाल रहा हूँ।"

"मुझे नहीं मालूम पहले तुमने किस तरह की छतें डाली हैं लेकिन यह छत अच्छी तरह डालनी है। बजरी की जगह बालू इस्तेमाल में लाने की कोशिश न करना। मैं खुद हर चीज पर ध्यान रखूँगी।"

"बालू से आपका क्या मतलब है ?" मजदूर ने हैरानी से पूछा।

"मैं तुम लोगों को अच्छी तरह जानती हूँ," माँ बोली और छत से नीचे उतरने लगी।

कोई भी मजदूर उनके साथ एक दिन से ज्यादा नहीं टिक पाता था।

तीन हफ्ते पहले जब मंसूर निर्माण-स्थली पर पहुँचा था तो शाम के समय उसने मोटे-ताजे मजूदर को जिसे वह मश्तागी से बुलाकर लाया था, हाथ आसमान की ओर उठाकर दुआ करते देखा था—"हे अल्लाह, मुझे इस औरत से बचाओ !"

"तो मैं अब चलता हूँ," मंसूर बोला।

"कहाँ ?" पिता ने हैरानी से पूछा।

सायबान की छत की छोटी-सी एक दरार से सूर्य की किरण उनकी गंजी खोपड़ी पर पड़ रही थी और इसके कारण उनकी खोपड़ी पालिशदार लग रही थी। दोनों ने घर की ओर देखा। माँ कुछ तख्तियाँ मजदूर को पकड़ा रही थी और मजदूर झुककर उन्हें ऊपर खींचकर अपनी बगल में रखता जा रहा था।

"बस इसी समय यहाँ से खिसक लेना चाहिए," मंसूर ने सोचा।

"वह उसेयन-बाला चला जा रहा है," पिता ने उससे कहा। दृष्टि कमजोर होने के बावजूद वह अच्छी तरह देख लेते थे। "अब फिर बकझक शुरू हो जाएगी।"

"क्यों ?"

"हथौड़ा कहीं गुम हो गया है।"

आस-पास बन रहे बंगलों की पहरेदारी का काम उसेयन-बाला करता था।

"नमस्ते !" तार के बाड़े के पास पहुँचते हुए उसने जोरों से कहा।

माँ ने कोई जवाब नहीं दिया। पिताजी ने कुछ न सुनने का बहाना बनाए किताब में सिर झुकाए रखा।

"नमस्ते" मंसूर ने जोरों से जवाब दिया।

कुछ देर तक बाड़े के पास खड़ा रहने के बाद उसेयन-बाला अन्दर आने के लिए निमन्त्रण की प्रतीक्षा किए बिना तारों के नीचे से रेंगकर अन्दर आ पहुँचा। घर के पास पहुँचकर उसने दुबारा नमस्ते कहा। इस बार पिता नमस्कार कहने को मजबूर हुए। माँ उसकी ओर देखने की भी जहमत उठाए बिना चुपचाप तख्तियाँ ढो-ढोकर ऊपर पहुँचाने में लगी रही।

"आओ बैठो," मंसूर ने अपने पैर हटा लिए जिससे कि वह पलंग के किनारे बैठ सके।

किसी भी समय बकझक शुरू होने का अन्दाजा लगाते पिताजी किताब पर नजरें टिकाए थे।

"कल रात मुझे एक बड़ा ही दिलचस्प सपना दिखाई दिया था," किसी भी किस्म के अन्देशा के बिना उसेयन-बाला ने कहा। "मैंने सपने में देखा कि मैं अकेला घर पर सोया हूँ और कोई अचानक ही मुझे जगाने लगता है। जागने पर मैंने देखा, यह यमदूत था। वह मुझे कन्धा पकड़कर जगा रहा था। 'उठो' वह मुझसे बोला। 'काफी सो चुके, उसेयन-बाला। अब तुम्हें मेरे साथ चलना है। दुनिया में तुम जरूरत से ज़्यादा रह चुके हो।' मेरा दिल तो डूब ही गया। मैंने सोचा, काम-तमाम हो गया, अन्त आ चुका है, उसेयन-बाला। मेरी बाँहों व टाँगों को फालिज मार गया था। मैं मुर्दे की तरह पड़ा रहा। और तब एकाएक पता नहीं कहाँ से मुझमें ताकत आ गई और मैं ठीक उसके सामने जोर-जोर से चिल्लाने लगा। वह उछलकर सीधे दरवाजे की ओर लपका और तीर की तरह सन्न से चला गया। वह इतना हड़बड़ा गया था कि उसका सिर चौखट से टकरा गया। जोरों से धप की आवाज हुई थी !...और तब मेरी नींद खुल गई..."

"और वह चुपचाप यहाँ आकर बैठ जाता है, फिर बेकार की बकवास शुरू कर देता है जैसे कोई बात ही न हुई हो," माँ पिता से मुखातिब होकर बोल उठी।

"माँ !" मंसूर मलामत से बोल उठा। "बहुत हुआ !"

लेकिन माँ दो टूक हमला शुरू कर चुकी थी। रूसी बोलते-बोलते वह अजरबैजानी बोलने लगी थी और उसेयन-बाला पर हथौड़ा व तख्तियाँ चुराने का आरोप लगा रही थी।

"अब सीधे खड़े होकर यहाँ से चलते बनो !" माँ ने उससे चीखकर कहा। "और हथौड़ा व तख्तियों को वापस करने से पहले मेरी नजरों के सामने न आना।"

"आप मेरा अपमान कर रही हैं, दिल्यारा-खानुम," उसेयनबाला ने विरोध प्रकट किया। "मैंने आपका हथौड़ा नहीं लिया है। मेरे बच्चे भूखों मरें अगर मुझे मालूम भी हो कि किसने लिया है।"

वह सच बोलता प्रतीत होता था। यहाँ तक कि माँ को भी अपने आरोप की न्यायसंगतता पर सन्देह होने लगा था लेकिन वह बात वापस लेने

को तैयार न थी और उठकर जाते दुखी उसेयन-बाला के पीछे-पीछे वह बोलती चली गई मानो पहरेदार के बेईमानी को साबित करने के लिए तर्क पेश कर रही हो।

उसेयन-बाला के साथ हुई घटना के बाद वहाँ से चले जाने का मंसूर का इरादा और मजबूत हो गया। माँ अब एकदम असह्य प्रतीत होने लगी थी। लगभग साल भर से वह इस आदमी से दोस्ताना व्यवहार करती रही थी, उसके साथ बैठकर उसने चाय पी थी, अपने दुःख बाँटे थे, उसके बच्चों के लिए काम का इन्तजाम किया था और अब एक क्षुद्र हथौड़े के लिए इस सारे पर पानी फेरकर रख दिया था।

"माँ, अपनी तबीयत खराब कर लोगी !" माँ के पास दौड़कर आते हुए मंसूर चिल्ला पड़ा। उसने एक झटके के साथ उसे लगभग धकिया-सा दिया और एक बड़ी-सी तख्ती उठाकर मजदूर को पकड़ा दी।

"मैं यह काम खुद बखूबी कर लूँगी," माँ हठ के साथ बोली और दूसरी तख्ती हाथों में उठाने लगी।

"तुम सोचती हो क्या कर रही हो ? तुम जानबूझकर मेरा मूड बिगाड़ने की कोशिश कर रही हो," मंसूर बोला।

"क्या ?" माँ ने जवाब दिया। "मैं तुम्हें क्या कह रही हूँ ?"

ऊलजलूल की बातें सुनने के बाद स्वभाव से ही मन्द उसेयन-बाला एकदम ही जड़-सा हो गया था और ज्यादा दूर नहीं जा पाया था। मंसूर को दौड़कर अपनी ओर आते देखकर वह सड़क से एक ओर हटने के लिए लगभग कई कदम दौड़ पड़ा।

"मैं अपनी कसम खाकर कहता हूँ कि हथौड़ा मैंने नहीं लिया है," उसके सामने निराशा से बाँहें फैलाकर वह बोला।

मंसूर ने उसे यथासम्भव एक बार फिर से आश्वस्त कराया और माँ के व्यवहार के लिए उससे क्षमा माँगी। उसने उसी पल शहर लौट जाने और फिर कभी इधर का मुँह न करने का फैसला कर लिया। एक बार फिर उसने दिमाग में उठते विचारों का जायजा लिया—बंगले के निर्माण के कारण माँ निश्चय ही आपे से बाहर हो गई थी; जिस दुराग्रह से वह इस काम में लगी थी, उसे देखकर और कुछ सोचा भी नहीं जा सकता था। और फिर माँ को भली-भाँति मालूम था कि न तो पिताजी, न बेटे—यानी एक भी आदमी

उसके साथ यहाँ नहीं रह पाएगा और माँ के लिए यहाँ अकेली रहना उनके स्वास्थ्य की दृष्टि से खतरनाक था। यह बात डॉक्टरों ने और उसके सारे परिचितों व परिवार वालों ने बार-बार कही थी। लेकिन इसके बावजूद वह निर्माण के काम में लगी थी। इस काम में वह अपनी क्षमता से अधिक उत्साह दिखा रही थी, कर्ज में डूब गई थी फिर भी इस परेशान करने वाले मकान को बनवाने में लगी थी। एक दिन यह मकान उन्हें जरूर ले डूबेगा। उसे भी अपना दिल कड़ा करके बड़े भाई की तरह रुख अख्तियार करना पड़ेगा—उस काम से अपना हाथ खींच लेना होगा जो उसकी माँ को बर्बाद करके छोड़ेगा। लेकिन काश, वह अपने हाथ इस काम से खींच पाता!

पिताजी पढ़ने में लगे थे। माँ बालू पर बैठकर हथौड़े से एक बड़े पत्थर को टुकड़े-टुकड़े करने की कोशिश कर रही थी। वह धूल से सनी थी। उनके चेहरे पर पसीने से भीगी धूल की तह गहरे मटमैले गोंद की तरह दिखाई देती अनेक रूप धारण कर रही थी।

मंसूर घर के अन्दर जा पहुँचा। मजदूर तख्तियों से छत छा चुका था। दरारों को बन्द करते हुए उसने कहीं-कहीं पर कोलतार लिपटा नमदा भी लगा दिया था। मंसूर को अपनी पुरानी पतलूनें गैस स्टोव के पास कुछ चीजों के ढेर में पड़ी मिलीं। उसने उन्हें अखबारों में लपेट लिया। पिताजी ने कमरे में झाँककर देखा।

''क्या बात है ?''

''मैं जा रहा हूँ।''

''क्या तुम माँ की मदद नहीं करोगे ?''

''नहीं।''

पिताजी उदासीनता से मुस्कराए। मंसूर ने पतलूनों वाले बण्डल को धागे से बाँध दिया।

''क्या तुम्हें भूख नहीं लगी है ?'' पिताजी ने पूछा।

''नहीं। आपको मालूम है, मेरे स्लिपर कहाँ हैं ?''

''बरामदे में।''

पिताजी स्लिपर ले आने चले गए। मंसूर खिड़की के पास आया। माँ अभी तक पत्थर पर जोर-जोर से हथौड़ा पटक रही थी।

''क्या वह जा रहा है ?'' उसने पिताजी से पूछा।

''शहर में उसे जरूरी काम है,'' पिताजी ने समझाया।

वह कुछ भी नहीं बोली, सिर्फ पत्थर पर पहले से भी ज्यादा ताकत से हथौड़ा मारने लगी। पत्थर बालू में आधा गड़ा था। पत्थर के नीचे दूसरा पत्थर रख देने का उसे ख्याल ही नहीं आया था। या शायद उसकी दिलचस्पी पत्थर के टूटने, न टूटने में न थी। शायद उसे पत्थर पर प्रहार करने में ही आनन्दानुभूति हो रही थी। या शायद आनन्दानुभूति नहीं बल्कि जरूरत महसूस करती हो। वह जोर-जोर से साँस ले रही थी और कई बार प्रहार करने के बाद वह पीछे को झुक पड़ती थी ताकि सीने में ज्यादा हवा पहुँचे। उसका थुलथुला शरीर लिबास के बाहर झूल रहा था। वह बार-बार मुँह बा रही थी। तीन साल पहले मंसूर ने पहली बार माँ को लेटकर एक भारी पत्थर रेंगते हुए ले जाते देखा था। तब वह बहुत भयभीत हो उठा था—''क्या बात है, माँ ? तुम जमीन पर क्यों लेटी हो ?'' ''इस तरह पत्थर घसीटकर ले जाना ज्यादा आसान है,'' माँ ने समझाया था। ''इस तरह मेरे पैर नहीं दुखते हैं।'' जीवन में पहली बार उसने अपनी दुर्बलता स्वीकार की थी। उस समय मंसूर लगभग रो उठा था। इस समय माँ के प्रति उसकी सहानुभूति अधिक बलवती न थी। लेकिन इसके बावजूद अपनी दुर्बलता व बच्चों के प्रति नाराजगी छुपाने की कोशिश में पत्थर पर हथौड़े से प्रहार करते देखना भी कम पीड़ादायक न था।

''माँ,'' खिड़की के पास से मंसूर ने माँ को आवाज दी। ''तुम गलत ढंग से पत्थर तोड़ रही हो। तुम्हें उसके नीचे कोई दूसरा पत्थर रखना चाहिए।''

और इसके साथ ही उसने महसूस कर लिया कि अगर सत्तारजादे से तस्वीर हासिल करनी थी तो माँ से यह बात नहीं बोलनी चाहिए थी।

''मैं उस तरह भी आजमा चुकी हूँ,'' वह थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद बोली मानो सोच रही थी कि जवाब दे या नहीं। ''पत्थर नीचे से फिसल जाता है।''

घर से बाहर निकलकर मंसूर उसके पास चला अया। पत्थर पर हथौड़े से प्रहार तो वह बन्द कर चुकी थी लेकिन जानबूझकर खामोश रहते हुए हथौड़े को हाथ में ही कसकर पकड़े थी। वह रुककर इन्तजार कर रही थी कि मंसूर क्या कहना चाहता है। ''जो जी में आए तुम करो,'' उसकी समस्त

भावमुद्रा यही कहती प्रतीत होती थी—"मैं बच्चों से हर तरह की उपेक्षा झेलने को तैयार हूँ..." मंसूर भी खामोश ही रहा। उसके दिमाग में फिर यह ख्याल उठा कि अगर सचमुच यहाँ से चल देना है तो अभी, इसी पल माँ को बता देना पड़ेगा, नहीं तो देर हो जाएगी।

"वहाँ ऊपर मजदूर क्या कर रहा है ?" उसने माँ की ओर देखे बिना पूछा।

"मुझे भी नहीं मालूम," माँ ने थके स्वर में थोड़े देर के बाद जवाब दिया, "अभी ऊपर जाकर देखूँगी..."

"मैंने नीचे से ही देख लिया। तख्तियाँ तो उसने बड़े अच्छे ढंग से लगाई हैं।"

"मुख्य बात यह है कि वह बजरियों की जगह बालू काम में न लाए।"

"आह, तुम क्या कह रही हो ! वह वैसा आदमी नहीं लगता..."

मंसूर पत्थर के टुकड़े करने लगा और तब उसे पता चला कि कम-से-कम 50 टोकरियाँ ऐसी बजरी चाहिए थी। फिर सीमेण्टमें मिलाने के लिए उठा-उठाकर बालू ले गया और तब तक शाम हो चुकी थी और उसने सीमेण्ट-बालू के मिश्रण को छत पर पहुँचाना शुरू किया। बाल्टी में बेलचे से मिश्रण डाल-डालकर वह दीवार से लगी लकड़ी की सीढ़ी पर चढ़कर बाल्टी मजदूर को थमाता जाता। मजदूर छत पर बिछी बजरी के ऊपर मिश्रण से भरी बाल्टी उलटकर समतल बनाता जाता। मंसूर पल भर के लिए रुकता तो माँ बाल्टी या बेलचा उठा लेती जिससे कि काम बिना रुके चलता रहे।

सूरज अभी भी काफी ऊँचे था और उसकी जलती किरणें जान काढ़े ले रही थीं। किरणों से बचने के लिए मजदूर ने अपनी कमीज सिर पर लपेट ली थी।

"यहाँ अप्शेरोन में धूप बड़ी खतरनाक साबित हो सकती है," बेलचा थामते हुए मजदूर ने मंसूर को बताया। "इसमें आदमी पागल भी हो सकता है। गेरादिल के रहने वाले एक आदमी ने जो घटना मुझे बताई थी, मुझे याद आ रही है। उसके साथ यह घटना तब हुई थी जब वह एक खदान से ट्रक पर लाद-लादकर बालू ढो रहा था। झुलसाती धूप में वह ट्रक पर बालू लादकर एक दिन में 20 या 30 खेप ले जाया करता था। इधर-उधर जाते समय वह कभी-कभी अपने घर भी हो आता था। तब वह अविवाहित था

अपनी माँ के साथ रहता था। एक दिन जब वह घर लौटा तो माँ नहीं थी। दरवाजे में ताला लगा था। सड़क पर एक किनारे ट्रक खड़ी करके वह बाड़े की छाया में बैठ गया। धूप सचमुच अचेतकारी थी। सब कहीं खामोशी छायी थी...आस-पास में कोई भी न था—सड़क के पार सिर्फ पड़ोसी का टट्टू रस्सी से बँधा उसकी ओर देख रहा था। वह काफी देर तक यूँ ही बैठा रहा। फिर वह एकाएक उठ खड़ा हुआ और टट्टू को ट्रक के पीछे डालकर चल पड़ा। वह बिलकुल अपने होश में न था और अपनी इस हरकत की उसे कोई खबर न थी। टट्टू का मालिक उसके पीछे-पीछे भागा लेकिन वह उड़नछू हो चुका था...वह टट्टू को लेकर सीधे मश्तागी के बाजार में जा पहुँचा। अच्छी-खासी रकम लेकर उसने टट्टू को बेच दिया। आज तक वह अपनी इस हरकत का कारण नहीं जान पाया...धूप उसके सिर में घुस गई थी।"

शाम के समय जब सूरज समुद्र की ओर आधा से ज्यादा उतर चुका था, एक बाल्टी का हैण्डल टूट गया। उस समय मंसूर छत पर काम कर रहा था और मजदूर बाल्टी में हैण्डल लगा रहा था। तभी उसे थोड़ी देर के लिए आराम करने का मौका मिला। छत के एकदम किनारे पर जहाँ नमदे के बेडौल कटे टुकड़े बाहर को निकले थे, अपना मुँह नीचे रखकर वह पेट के बल वहीं पर लेट गया। थकान के मारे उसका चेहरा जल रहा था और उसने चेहरे को पत्थर से लगा लिया था जो ठण्डा हो चुका था। दरअसल, यह कहना ज्यादा सही होगा कि उसकी दुर्बल गर्दन सिर को अब और देर तक अपने ऊपर टिकाये रहने में असमर्थ हो गई थी और उसका चेहरा पूरे बोझ से पत्थर से टिका हुआ था।

नीचे मजदूर अभी तक बाल्टी का हैण्डल ठीक करने में लगा था। काम पर नजर रखे माँ उसकी बगल में ही बालू पर बैठी थी। छत के ऊपर से मंसूर को वह बहुत हद तक मृत दादी की तरह प्रतीत हो रही थी। मजदूर को हैण्डल ठीक करने में दिक्कत हो रही थी औरउसे ठीक करने में उसने काफी समय लगाया। धीरे-धीरे थकान से उत्पन्न मंसूर की निश्चेष्टता जाती रही। माँ की ओर देखते हुए उसे बहुत साल पहले का वह समय याद हो आया जब वे बिना छत वाले ठीक ऐसे ही मकान में दादी के साथ पिर्शागी में रहते थे। तब लड़ाई चल रही थी। माँ हर दिन शहर से रात को आती थी

और साथ में उन लोगों के लिए खाना भी लाती थी। जिस दिन वह किसी कारणवश नहीं आ पाती थी, दादी डबल रोटी काटने वाले चाकू में लगे रोटी के भुरकों को दोनों भाइयों में बाँट देती थी...

दादी का देहान्त अभी हाल में हुआ था लेकिन स्मृति में वह उसी तरह आज भी बनी थी जैसी पिर्शागी के ग्रीष्म में वह लड़ाई के समय थी। माँ अब बहुत हद तक उसी जैसी दिखने लगी थी। उस जमाने में माँ देखने में अच्छी थी। या शायद यह उसके मन की भावना रही हो जो माँ के प्रति तब उसमें थी।

वह उन्हें किताबें पढ़-पढ़कर सुनाना पसन्द करती थी। अब मंसूर को महसूस होता था कि वह वास्तव में ज्यादा पढ़ी-लिखी न थी। लेकिन उन्हें उस समय इसकी कोई जानकारी न थी। उसके पास कई मनपसन्द पुस्तकें थीं—'रॉब रॉय', 'नन्हा यायावर', 'ओलिवर ट्विस्ट' और 'बड़े घर की छोटी मालकिन'।

...वे दूसरी मंजिल पर अपने फ्लैट की लम्बी बॉलकनी पर बैठ जाते थे। वहाँ से एक सीढ़ी नीचे की ओर जाती थी। चूँकि माँ पथरीली सीढ़ी पर बैठना मना करती थी इसलिए बॉलकनी में रखे छोटे-से लकड़ी के बैठका पर वह अपने लिए बड़ी मुश्किल से जगह निकाल पाता था। जीने से जुड़े लकड़ी के उस बैठका पर बैठकर वे लगातार घण्टों तक गरीब 'ओलिवर ट्विस्ट' की कहानी सुनते रहते थे...

जरूर उसकी आँख लग गई होगी क्योंकि जब उसने आँखें खोलीं, माँ बगल में बैठी दिखाई दी। वह भी छत के किनारे बैठी थी।

"क्या बात है ?" माँ ने पूछा। "कहीं कुछ दुख रहा है ?"

"नहीं," वह बोला, "बस आँख लग गई थी।"

वह कुछ देर तक चुप रही और फिर उसकी ओर देखे बिना कुछ-कुछ अनतिदृढ़ स्वर में पूछा—'सिर दुख रहा है ?"

"थोड़ा-थोड़ा।"

वह परेशान हो उठी थी, "मैं तुम्हारे सिर में मालिश कर दूँ ?"

"कर दो," मंसूर बोला।

बड़ी चौकसी से उसने उसकी कनपटियों व ललाट पर थपथपाना शुरू कर दिया। उसकी अंगुलियों के सिरे का चमड़ा रूखा था। मंसूर आँखें बन्द

किए लेटा रहा।

"माँ, तुम्हें याद है, तुम किस तरह 'ओविर ट्विस्ट' पढ़कर मुझे सुनाया करती थी ?" आँखें खोले बिना मंसूर ने पूछा।

"याद है।"

मंसूर सोचता लेटा रहा। निस्सन्देह, कुछ लोगों की तरह दृढ़ चरित्र का होना अच्छी बात है, वह सोच रहा था, लेकिन इसके साथ ही दयालु होना भी बुरी बात नहीं। कहावत भी है, जाकी रही भावना जैसी। और फिर यह अनिवार्य रूप से आवश्यक भी नहीं कि आदमी जो भी करे वह तर्कसम्मत या बुद्धिसम्मत ही हो और वह किसी ऐसे लक्ष्य की ओर ही सदैव निदेशित हो जिसे वह उचित मानता हो। ऐसी भी परिस्थितियाँ होती हैं जब आदमी को कोई ऐसा काम भी करना पड़ता है जो उकसे लिए बहुत पहले ही बेमानी हो चुका होता है लेकिन इसके बावजूद इसलिए करना पड़ता है क्योंकि वह काम उन ल ोगों को पसन्द है जिनसे आप प्यार करते हैं और उस काम की निरर्थकता अभी तक उनके मन में घर नहीं बना पाई है। आपके दृष्टिकोण से वे गलतफहमी का शिकार हैं और उनकी पीड़ाएँ बेतुकी हैं लेकिन अगर आप उनसे प्यार करते हैं तो उन्हें परित्यक्त करना असम्भव है और कोई उनसे प्यार किए बिना कैसे रह सकता है...

जब आदमी अपने घर की छत पर माँ की गोद में सिर रखकर लेटा हो और अप्शेरोन का पीड़ादायी सूरज सागर में डूब चुका हो तो बड़े ही अद्‌भुत विचार मस्तिष्क में आते हैं।
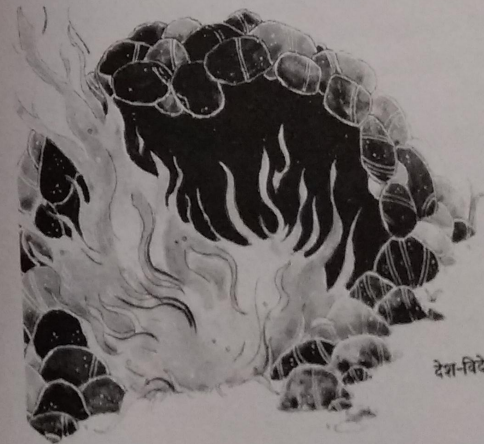
दादी का तम्बाकू का थैला

जब दादी का तम्बाकू खत्म हो जाता, वह हमेशा मुझे घर से बाहर जाने के लिए मना कर देती थी। ''पल भर मेरे साथ तो बैठो, लाड़ले !'' वह कहती। ''तुमसे तम्बाकू की तेज व बड़ी शानदार खुशबू आती है।'' मैं अपनी जेबों व कमीज को उलट-पलट डालता लेकिन मुझे रत्ती भर भी तम्बाकू नहीं मिलता। मुझे तम्बाकू की बू भी कहीं महसूस नहीं होती। और महसूस भी कैसे होती जबकि मैंने जीवन में कभी सिगरेट तक नहीं पी थी। तो फिर दादी मुझे इस तरह बाँहों में भरकर क्यों कहती थी कि मुझसे तम्बाकू की बू आती है ?

मेरे लिए यह असह्य होता था—मैं रोना-धोना शुरू कर देता और चीख-चीखकर उससे बाँहों से मुक्त कर देने के लिए चिरौरी करता। मैं कुपित होकर बूढ़ीजान से साबित करने की कोशिश करता कि उसे गलतफहमी हुई है, मुझसे किसी भी किस्म की कोई बू नहीं आती है। ''मुझसे नहीं, तुमसे तम्बाकू की बू आती है !'' मैं चिंचियाकर कहता। ''तुम्हारे मुँह से, रूमाल से, हर चीज से बू आती है। मैं तुम्हारे साथ नहीं बैठना चाहता हूँ ! मुझे अकेला छोड़ दो !''

दादी मेरी बात का तनिक भी बुरा नहीं मानती थी। वह परे हटकर आह भरती और देर तक मेरे चेहरे की ओर घूरती रहती। उसकी घूरती नजर अपने चेहरे पर महसूस कर मैं भी उस पर आँखें तरेरे बिना नहीं रह पाता। कैसी झुर्रीदार और दुबली-पतली थी वह !...और उसका तम्बाकू खत्म हो गया था...मुझे उस पर इतना तरस आने लगता कि मैं रात में उसके बिस्तरे पर उसके साथ ही सोने का वायदा कर लेता। वह मुझे दुबारा चूमने-दुलारने लगती और रो-रोकर कहती कि मैं हूबहू अपने पिता की तरह था। वह जब कभी रोती थी हमेशा यही कहती थी।

दादी कभी-कभी सुबकते समय मेरे कान में बुदबुदाकर मुझसे भी रोने के लिए कहती। शायद मेरे पिताजी को मेरी सुबकियाँ सुनाई दे जाएँ...

रोकर दिल हल्का कर लेने के बाद दादी अचानक ही चुप हो जाती और तुरन्त ही खुद को कोसना शुरू कर देती—''देख बुढ़िया, यह तूने क्या कर दिया, उसे भी रुला दिया ! तू रोयी ही क्यों थी ? जिससे कि नन्हे-मुन्ने का दिल टूट जाए !''

जल्दी-जल्दी आँसू पोंछकर वह यथासम्भव मुस्कराने की कोशिश करती। वह मुझे फौरन खुश होते देखना चाहती। ''जरा हँस भी लाड़ले,'' वह जोर डालती। ''जरा हँस तो सही कि तेरे बाप की आत्मा खुश हो उठे !''

''उसे सच में मालूम है कि मुझसे तम्बाकू की कोई बू नहीं आती है,'' मैं कभी-कभी सोचा करता। ''वह भली-भाँति जानती है कि न तो मैं उसका तम्बाकू चोरी करके लेता हूँ न अजेर की तरह सिगरेट के टुकड़े उठाता फिरता हूँ। लेकिन तब फिर ऐसा कैसे होता है ? जैसे ही सका तम्बाकू खत्म हो जाता है, वह मुझे क्यों टस से मस भी नहीं होने देती है और मुझसे चेहरा

सटाकर कहना शुरू कर देती है कि मुझसे तम्बाकू की बू आती है ?''

दादी के लिए तम्बाकू का मतलब था सारी दुनिया। जहाँ उसका तम्बाकू का थैला खाली होता, सारे रघर पर मुसीबत आ जाती। माँ पहले से अधिक दुखी दिखाई देने लगती और घर पर कम-से-कम दिखाई देने की कोशिश करती। चाय के बर्तन वगैरह धोने के बाद वह फौरन ही कहीं चली जाती। ''फिर तम्बाकू खतम हो गया !'' वह मुझे देखकर बड़बड़ाती मानो दादी का तम्बाकू खत्म होने के लिए मैं दोषी था।

मुझे अच्छी तरह मालूम था कि जिस थैले में दादी तम्बाकू रखती थी, वह थैला पिताजी का था। मैं यह भी जानता था कि दादी को धूम्रपान की पहले कोई आदत नहीं थी। पिताजी के मोर्चे पर जाने के फौरन बाद ही उसने धूम्रपान शुरू किया था। वह अक्सर कहा करती थी कि धम्रपान करने वाली औरतें पिताजी को एकदम नापसन्द थीं और पिताजी के लौटते ही वह भी धूम्रपान छोड़ देगी। वह सचमुच छोड़ना चाहती थी लेकिन नहीं छोड़ सकी हालांकि वह मेरे पिताजी से बहुत प्यार करती थी और जब कभी पिताजी की चर्चा चलती, वह हमेशा रोना शुरू कर देती।

ऐसे मौके पर मेरी माँ की आँखें भी डबडबा जातीं, मेरी बुआ भी रोने लगती और यहाँ तक कि चाचा करश भी चुपके-चुपके आँखें पोंछने लगते। लेकिन पता नहीं क्यों सिर्फ मैं नहीं रो पाता था।

हालांकि मैं कभी-कभी रोने की जबर्दस्त इच्छा महसूस करता था ! मैं खूब जोर-जोर, दिल बाहर निकाल-निकालकर रोना चाहता था, ठीक दादी की तरह ! लेकिन में रो ही नहीं पाता था। यह बहुत पीड़ादायक होता था, दादी के तम्बाकू खत्म हो जाने से भी ज्यादा या जब बुरा मानकर सेविल मुझसे बातचीत बन्द कर देती थी, उससे भी ज्यादा।

मैंने मामी और दादी से कई बार पूछा था कि मैं दूसरों की तरह क्यों नहीं रो पाता। आमतौर से दादी सिर्फ आह भरकर रूमाल से अपने आँसू पोंछकर चुप रह जाती थी और माँ समझाने की कोशिश करती कि जब मैं बच्चा था तो इतना रोया था कि मेरे आँसू सूख गए थे।

सचमुच, मुझे उम्मीद थी कि जब मैं बड़ा हो जाऊँगा, निस्सन्देह, अपने पितजी से प्यार करने लगूँगा और किसी दूसरे सामान्य आदमी की तरह ही उनकी चर्चा सुनते ही मेरा गला रुँध जाएगा।

लेकिन समय बीतता रहा, दादी का तम्बाकू का थैला भरा जाता रहा फिर खाली होकर दीवार पर लटकाया जाता रहा, दादी पहले से भी अधिक दुबली-पतली होती गई और माँ के बाल अधिकाधिक सफेद होते गए लेकिन इसके बावजूद मैं रोना नहीं सीख पाया। फिर दादी चल बसी। वह ग्रीष्म की एक पुरसुकून शाम को मरी जब सूरज अभी-अभी डूबा ही था और समोवार उबलने लगा था...उसके जनाजे में बहुत-से लोग आए लेकिन रोया कोई भी नहीं। ''वह बेहतर दुनिया में चली गई,'' लोगों का कहना था। ''भगवान उसकी आत्मा को शान्ति दे।'' यह भी बात फैली थी कि दादी की मृत्यु समय से पहले हुई थी और उसका इलाज करने वाले डॉक्टर का कहना था कि उसकी मृत्यु का कारण तम्बाकू था। जनाजे के बाद जब माँ दादी का बिस्तर ट्रंक के पीछे रख रही थी, आह भरकर बोली–''तम्बाकू ने बूढ़ीजान के प्राण ले लिये।''

क्या सचमुच मेरे अलावा कोई दादी के मरने का असली कारण नहीं समझ पाया था ? उसके दुःख ने उसकी जान ली थी ! दुःख के कारण ही मजबूर होकर उसने तम्बाकू पीना शुरू किया था ! और अगर मेरे पिताजी घर लौट आते तो वह जरूर ही उस मनहूस तम्बाकू को छोड़ देती। उसे सचमुच इस बात का भय सताता था कि पिताजी जरूर एक दिन लौट आएँगे और अपने थैले को देखकर कुपित हो उठेंगे कि उनकी माँ ने भी धूम्रपान शुरू कर दिया था। बात यह नहीं थी कि दादी को मेरे पिताजी का भय था–माँ भला अपने बेटे से क्योंकर भयभीत हो सकती थी–लेकिन वह उनको दुखी करने के भय से जरूर बुरी तरह पीड़ित थी।

मरने से पहले वाले दिन जब माँ कहीं दूर थी, दादी ने मुझे इशारे से बुलाकर कहा था कि जब वह मर जाए तो मैं बाजार से तम्बाकू खरीदकर उस थैली को पूरी तरह भर दूँ। ''पूरी तरह थैले को तम्बाकू से भर देना। सुन रहे हो न ? वहाँ उस जगह आले पर थैले को कील से टाँग देना।''

उसने मुझे आला व कील, दोनों दिखा दिए थे। उसने कई बार ऐसा किया था...

नहीं, दादी की मृत्यु का कारण तम्बाकू नहीं था।

दरवाजा खुला और पितीज अन्दर चले आए। मैं दौड़कर उनके गले में अपनी बाँहें डाल देना चाहता हूँ, उन्हें चूमना चाहता हूँ और उनके कन्धे पर

सटाकर कहना शुरू कर देती है कि मुझसे तम्बाकू की बू आती है ?''

दादी के लिए तम्बाकू का मतलब था सारी दुनिया। जहाँ उसका तम्बाकू का थैला खाली होता, सारे रघर पर मुसीबत आ जाती। माँ पहले से अधिक दुखी दिखाई देने लगती और घर पर कम-से-कम दिखाई देने की कोशिश करती। चाय के बर्तन वगैरह धोने के बाद वह फौरन ही कहीं चली जाती। ''फिर तम्बाकू खतम हो गया !'' वह मुझे देखकर बड़बड़ाती मानो दादी का तम्बाकू खत्म होने के लिए मैं दोषी था।

मुझे अच्छी तरह मालूम था कि जिस थैले में दादी तम्बाकू रखती थी, वह थैला पिताजी का था। मैं यह भी जानता था कि दादी को धूम्रपान की पहले कोई आदत नहीं थी। पिताजी के मोर्चे पर जाने के फौरन बाद ही उसने धूम्रपान शुरू किया था। वह अक्सर कहा करती थी कि धम्रपान करने वाली औरतें पिताजी को एकदम नापसन्द थीं और पिताजी के लौटते ही वह भी धूम्रपान छोड़ देगी। वह सचमुच छोड़ना चाहती थी लेकिन नहीं छोड़ सकी हालांकि वह मेरे पिताजी से बहुत प्यार करती थी और जब कभी पिताजी की चर्चा चलती, वह हमेशा रोना शुरू कर देती।

ऐसे मौके पर मेरी माँ की आँखें भी डबडबा जातीं, मेरी बुआ भी रोने लगती और यहाँ तक कि चाचा करश भी चुपके-चुपके आँखें पोंछने लगते। लेकिन पता नहीं क्यों सिर्फ मैं नहीं रो पाता था।

हालांकि मैं कभी-कभी रोने की जबर्दस्त इच्छा महसूस करता था ! मैं खूब जोर-जोर, दिल बाहर निकाल-निकालकर रोना चाहता था, ठीक दादी की तरह ! लेकिन में रो ही नहीं पाता था। यह बहुत पीड़ादायक होता था, दादी के तम्बाकू खत्म हो जाने से भी ज्यादा या जब बुरा मानकर सेविल मुझसे बातचीत बन्द कर देती थी, उससे भी ज्यादा।

मैंने मामी और दादी से कई बार पूछा था कि मैं दूसरों की तरह क्यों नहीं रो पाता। आमतौर से दादी सिर्फ आह भरकर रूमाल से अपने आँसू पोंछकर चुप रह जाती थी और माँ समझाने की कोशिश करती कि जब मैं बच्चा था तो इतना रोया था कि मेरे आँसू सूख गए थे।

सचमुच, मुझे उम्मीद थी कि जब मैं बड़ा हो जाऊँगा, निस्सन्देह, अपने पितजी से प्यार करने लगूँगा और किसी दूसरे सामान्य आदमी की तरह ही उनकी चर्चा सुनते ही मेरा गला रुँध जाएगा।

लेकिन समय बीतता रहा, दादी का तम्बाकू का थैला भरा जाता रहा फिर खाली होकर दीवार पर लटकाया जाता रहा, दादी पहले से भी अधिक दुबली-पतली होती गई और माँ के बाल अधिकाधिक सफेद होते गए लेकिन इसके बावजूद मैं रोना नहीं सीख पाया। फिर दादी चल बसी। वह ग्रीष्म की एक पुरसुकून शाम को मरी जब सूरज अभी-अभी डूबा ही था और समोवार उबलने लगा था...उसके जनाजे में बहुत-से लोग आए लेकिन रोया कोई भी नहीं। ''वह बेहतर दुनिया में चली गई,'' लोगों का कहना था। ''भगवान उसकी आत्मा को शान्ति दे।'' यह भी बात फैली थी कि दादी की मृत्यु समय से पहले हुई थी और उसका इलाज करने वाले डॉक्टर का कहना था कि उसकी मृत्यु का कारण तम्बाकू था। जनाजे के बाद जब माँ दादी का बिस्तर ट्रंक के पीछे रख रही थी, आह भरकर बोली—''तम्बाकू ने बूढ़ीजान के प्राण ले लिये।''

क्या सचमुच मेरे अलावा कोई दादी के मरने का असली कारण नहीं समझ पाया था ? उसके दुःख ने उसकी जान ली थी ! दुःख के कारण ही मजबूर होकर उसने तम्बाकू पीना शुरू किया था ! और अगर मेरे पिताजी घर लौट आते तो वह जरूर ही उस मनहूस तम्बाकू को छोड़ देती। उसे सचमुच इस बात का भय सताता था कि पिताजी जरूर एक दिन लौट आएँगे और अपने थैले को देखकर कुपित हो उठेंगे कि उनकी माँ ने भी धूम्रपान शुरू कर दिया था। बात यह नहीं थी कि दादी को मेरे पिताजी का भय था—माँ भला अपने बेटे से क्योंकर भयभीत हो सकती थी—लेकिन वह उनको दुखी करने के भय से जरूर बुरी तरह पीड़ित थी।

मरने से पहले वाले दिन जब माँ कहीं दूर थी, दादी ने मुझे इशारे से बुलाकर कहा था कि जब वह मर जाए तो मैं बाजार से तम्बाकू खरीदकर उस थैली को पूरी तरह भर दूँ। ''पूरी तरह थैले को तम्बाकू से भर देना। सुन रहे हो न ? वहाँ उस जगह आले पर थैले को कील से टाँग देना।''

उसने मुझे आला व कील, दोनों दिखा दिए थे। उसने कई बार ऐसा किया था...

नहीं, दादी की मृत्यु का कारण तम्बाकू नहीं था।

दरवाजा खुला और पितीज अन्दर चले आए। मैं दौड़कर उनके गले में अपनी बाँहें डाल देना चाहता हूँ, उन्हें चूमना चाहता हूँ और उनके कन्धे पर

सिर रखकर रोना चाहता हूँ। लेकिन दौड़ने की बात तो दूर रही, मैं उठ भी नहीं पाता हूँ—ऐसा लगता था मानो किसी ने मुझे पकड़ रखा था।

फिर अचानक ही मुझे खाली थैले की याद हो आई। मुझे दौड़कर उसे दीवार से उतारकर यथाशीघ्र कहीं-न-कहीं छुपा देना चाहिए। लेकिन मैं यह करूँ तो कैसे, मैं तो इंच भर भी हिल-डुल नहीं सकता था।

पिताजी मेरे पास आकर मुझ पर झुक पड़ते हैं—जब वह झुककर मेरे ललाट पर चुम्बन लेते हैं तो मुझे उनकी झाईंदार, दाढ़ीदार ठुड्डी दिखाई देती है। मैं उनके गले में बाँहें डालकर उनकी कड़ी काली-काली मूँछों को चूम लेता हूँ जिनसे तम्बाकू की साफ-साफ बू आ रही थी।

अब मेरे पिताजी अपने लाल सूटकेस के पास जाएँगे, उसे खोलेंगे और मेरे लिए खरीदकर लाया सूट निकालेंगे। मैं सूट पहन लूँगा...

मैं गलियों में दौड़कर चीखता क्यों नहीं हूँ—"पिताजी आ गए हैं ! मेरे पिताजी आ गए हैं ! अब मैं अनाथ नहीं हूँ !" काश, मैं पिताजी को परे हटाकर, उनके ताकतवर हाथों को हटाकर, झटककर सूट उठा लेता और उसे पहनकर गलियों में भाग खड़ा होता और हर किसी को रोक-रोककर यह खबर सुनाता जाता ! सारी दुनिया को मालूम होना चाहिए कि मेरे भी पिता हैं ! "सुनो लोगो, सुनो ! मेरे पिताजी लौट आए हैं। मेरे भी पिता हैं ! ऐ, लोगो ! मुझसे उनके बारे में पूछते क्यों नहीं ? उनके बारे में मुझसे बात क्यों नहीं करना चाहते ? वह सचमुच आ गए हैं, घर लौट आए हैं !"

लेकिन यह सब मुझे नसीब नहीं—मैं खुद को पिताजी की बाँहों से छुड़ा नहीं सकता, न तो सूट पहन सकता हूँ न तो चीखते हुए गलियों में भाग सकता हूँ। मेरी नींद खुल गई—पिताजी जब मुझे चूमने को झुके तो मेरी आँखें खुल गईं। मैंने आँखें खोलीं तो माँ दिखाई दी।

सपना इतना सच्चा लगा था कि अगर मैं इसे पहली बार देखता तो जरूर ही पूछ बैठता कि पिताजी कहाँ हैं। लेकिन अब तो इस सपने को देखने की आदत-सी पड़ गई है...तम्बाकू की बू भरी कड़ी मूँछें, नया शानदार सूट, फाउण्टेन पेन—इन सब चीजों को मैं इतनी बार देख चुका था कि जब मैं गहरी नींद में था तब भी महसूस कर रहा था कि यह और कुछ नहीं, मात्र सपना था...

जागते ही मुझे पिछले दिन मम्मी से हुई गातचीत याद हो आई। आज

मुझे प्रादेशिक केन्द्र में जाकर पेंशन के बारे में पता लगाना था। मुझे गाजी चाचा के पास जाना, हैट उतारकर आदरपूर्वक उनका अभिवादन करना था। जब वह मुझे अन्दर बुला लेंगे तो मुझे नम्रतापूर्वक साफ-साफ आवाज में कहना था—"किसी-न-किसी कारणवश इस महीने का पेंशन रुका पड़ा है। अगर आपको बहुत अधिक कठिनाई न हो (मुझे यह बात जरूर ही कहनी थी !) तो क्या आप देख सकते हैं कि ऐसा क्यों हुआ है। मम्मी बीमार है...वह खुद नहीं आ सकती है। शायद इस समय पैसे नहीं हैं ? तो चिन्ता की कोई बात नहीं, हम काम चला लेंगे..."

गाजी चाचा रजिस्टर खोलकर देखेंगे कि पैसे कभी के आ चुके हैं और बात यह है कि जरीफा ने फार्म गुम कर दिया था। वह मुझे जरीफा के पास भेज देंगे और जरीफा फार्म ढूँढ़कर मुझे सलीम चाचा के पास भेज देगी। मैं दस्तखत कर दूँगा और वह मुझे एक सौ चालीस रूबल दे देंगे।

"एक सौ चौवालीस रूबल" रजिस्टर पर लिखा होगा लेकिन यह कोई बड़ी बात नहीं, चार रूबल कोई मायने नहीं रखते...

पैसे पाने के बाद मुझे दूकान जाना था और तीनपौण्ड चीनी, दो पैकेट चाय, आधा पौण्ड मटर और बाजार से एक पौण्ड गोश्त खरीदना था।

मैंने खुद को साफ-सुथरा करने में खास ध्यान दिया। सूरज अभी तक नहीं निकला था और कमरे में अँधेरा छाया था। मेज पर समोवार में पानी उबल रहा था। माँ का मूड बड़ा खराब था, शायद इसलिए क्योंकि उसे मुझको बहुत सवेरे जगाना पड़ा था।

उसने चार अण्डे उबाले थे जिसमें से दो मुझे खाने के लिए कहा। दो अण्डों को लपेटकर रखा। जब मैंने दो प्याली चाय पी ली, उसने मुझे एक बार फिर से वही सारी बातें दुहराकर सुना दीं जो मुझे पिछले दिन उसने बताई थीं।

"अगर तुम्हें भूख लगे तो बैठकर पहले कुछ खा लेना। थोड़ा-सा नान खा लेना। ध्यान रखना कि पोटली खोलते समय नमक न गिरे। अगर रास्ते में कोई कार नजर आए तो लिफ्ट माँग लेना। ध्यान रहे, बाजार में तुम्हें बिलकुल भी पानी नहीं पीना है। अगर मुझे पता चला गया कि तुमने पानी पीया है तो फिर घर पर सूरत न दिखाना। अगर तुम्हें प्यास लगे तो चायखाने में जाकर एक प्याली चाय पी लेना या अच्छा होगा कि बिलकुल

सिर रखकर रोना चाहता हूँ। लेकिन दौड़ने की बात तो दूर रही, मैं उठ भी नहीं पाता हूँ—ऐसा लगता था मानो किसी ने मुझे पकड़ रखा था।

फिर अचानक ही मुझे खाली थैले की याद हो आई। मुझे दौड़कर उसे दीवार से उतारकर यथाशीघ्र कहीं-न-कहीं छुपा देना चाहिए। लेकिन मैं यह करूँ तो कैसे, मैं तो इंच भर भी हिल-डुल नहीं सकता था।

पिताजी मेरे पास आकर मुझ पर झुक पड़ते हैं—जब वह झुककर मेरे ललाट पर चुम्बन लेते हैं तो मुझे उनकी झाईंदार, दाढ़ीदार ठुड्डी दिखाई देती है। मैं उनके गले में बाँहें डालकर उनकी कड़ी काली-काली मूँछों को चूम लेता हूँ जिनसे तम्बाकू की साफ-साफ बू आ रही थी।

अब मेरे पिताजी अपने लाल सूटकेस के पास जाएँगे, उसे खोलेंगे और मेरे लिए खरीदकर लाया सूट निकालेंगे। मैं सूट पहन लूँगा...

मैं गलियों में दौड़कर चीखता क्यों नहीं हूँ—"पिताजी आ गए हैं ! मेरे पिताजी आ गए हैं ! अब मैं अनाथ नहीं हूँ !" काश, मैं पिताजी को परे हटाकर, उनके ताकतवर हाथों को हटाकर, झटककर सूट उठा लेता और उसे पहनकर गलियों में भाग खड़ा होता और हर किसी को रोक-रोककर यह खबर सुनाता जाता ! सारी दुनिया को मालूम होना चाहिए कि मेरे भी पिता हैं ! "सुनो लोगो, सुनो ! मेरे पिताजी लौट आए हैं। मेरे भी पिता हैं ! ऐ, लोगो ! मुझसे उनके बारे में पूछते क्यों नहीं ? उनके बारे में मुझसे बात क्यों नहीं करना चाहते ? वह सचमुच आ गए हैं, घर लौट आए हैं !"

लेकिन यह सब मुझे नसीब नहीं—मैं खुद को पिताजी की बाँहों से छुड़ा नहीं सकता, न तो सूट पहन सकता हूँ न तो चीखते हुए गलियों में भाग सकता हूँ। मेरी नींद खुल गई—पिताजी जब मुझे चूमने को झुके तो मेरी आँखें खुल गईं। मैंने आँखें खोलीं तो माँ दिखाई दी।

सपना इतना सच्चा लगा था कि अगर मैं इसे पहली बार देखता तो जरूर ही पूछ बैठता कि पिताजी कहाँ हैं। लेकिन अब तो इस सपने को देखने की आदत-सी पड़ गई है...तम्बाकू की बू भरी कड़ी मूँछें, नया शानदार सूट, फाउण्टेन पेन—इन सब चीजों को मैं इतनी बार देख चुका था कि जब मैं गहरी नींद में था तब भी महसूस कर रहा था कि यह और कुछ नहीं, मात्र सपना था...

जागते ही मुझे पिछले दिन मम्मी से हुई गातचीत याद हो आई। आज

मुझे प्रादेशिक केन्द्र में जाकर पेंशन के बारे में पता लगाना था। मुझे गाजी चाचा के पास जाना, हैट उतारकर आदरपूर्वक उनका अभिवादन करना था। जब वह मुझे अन्दर बुला लेंगे तो मुझे नम्रतापूर्वक साफ-साफ आवाज में कहना था—"किसी-न-किसी कारणवश इस महीने का पेंशन रुका पड़ा है। अगर आपको बहुत अधिक कठिनाई न हो (मुझे यह बात जरूर ही कहनी थी !) तो क्या आप देख सकते हैं कि ऐसा क्यों हुआ है। मम्मी बीमार है...वह खुद नहीं आ सकती है। शायद इस समय पैसे नहीं हैं ? तो चिन्ता की कोई बात नहीं, हम काम चला लेंगे..."

गाजी चाचा रजिस्टर खोलकर देखेंगे कि पैसे कभी के आ चुके हैं और बात यह है कि जरीफा ने फार्म गुम कर दिया था। वह मुझे जरीफा के पास भेज देंगे और जरीफा फार्म ढूँढ़कर मुझे सलीम चाचा के पास भेज देगी। मैं दस्तखत कर दूँगा और वह मुझे एक सौ चालीस रूबल दे देंगे।

"एक सौ चौवालीस रूबल" रजिस्टर पर लिखा होगा लेकिन यह कोई बड़ी बात नहीं, चार रूबल कोई मायने नहीं रखते...

पैसे पाने के बाद मुझे दूकान जाना था और तीनपौण्ड चीनी, दो पैकेट चाय, आधा पौण्ड मटर और बाजार से एक पौण्ड गोश्त खरीदना था।

मैंने खुद को साफ-सुथरा करने में खास ध्यान दिया। सूरज अभी तक नहीं निकला था और कमरे में अँधेरा छाया था। मेज पर समोवार में पानी उबल रहा था। माँ का मूड बड़ा खराब था, शायद इसलिए क्योंकि उसे मुझको बहुत सवेरे जगाना पड़ा था।

उसने चार अण्डे उबाले थे जिसमें से दो मुझे खाने के लिए कहा। दो अण्डों को लपेटकर रखा। जब मैंने दो प्याली चाय पी ली, उसने मुझे एक बार फिर से वही सारी बातें दुहराकर सुना दीं जो मुझे पिछले दिन उसने बताई थीं।

"अगर तुम्हें भूख लगे तो बैठकर पहले कुछ खा लेना। थोड़ा-सा नान खा लेना। ध्यान रखना कि पोटली खोलते समय नमक न गिरे। अगर रास्ते में कोई कार नजर आए तो लिफ्ट माँग लेना। ध्यान रहे, बाजार में तुम्हें बिलकुल भी पानी नहीं पीना है। अगर मुझे पता चला गया कि तुमने पानी पीया है तो फिर घर पर सूरत न दिखाना। अगर तुम्हें प्यास लगे तो चायखाने में जाकर एक प्याली चाय पी लेना या अच्छा होगा कि बिलकुल

मत पीना। जितनी चाय पीनी है, यही पी लो।" और मुझे उसने चाय की तीसरी प्याली ढालकर थमा दी हालांकि कटोरे में चीनी का एक दाना भी न था।

"तुम्हारा कुलनाम क्या है, बेटे ?"

"सेलीमोव ? तुम्हारे नाम तो कोई भी पैसा नहीं बाकी है।"

"क्यों ?"

"क्योंकि नहीं बाकी है। अब तुम बड़े हो गए हो और तुम्हें अपनी आजीविका खुद कमानी चाहिए। बस यही बात है।"

मेरा तो दम ही सटक गया। मैंने खौफ से गाजी चाचा की ओर देखा। पितृविहीन बालक के रूप में अपने इतने वर्षों के दौरान मुझे कभी ऐसी लाचारी नहीं महसूस हुई थी। "डैडी !" मैं चीख पड़ना चाहता था। "यह कैसे सच हो सकता है, डैडी ?"

आखिर यह हुआ कैसे ? मैं बालिग हो चुका था लेकन अपने पिता से अब तक प्यार नहीं कर पाया था ! मैं उन्हें याद करके कभी रोया भी नहीं था ? दादी का तम्बाकू वाला थैला भी मैंने अभी तक नहीं भरा था। लेकिन इसका कारण यह नहीं था कि मेरे पास पैसे नहीं थे। दादी के मरने के बाद भी हमें कई दफा पेंशन मिली थी। तम्बाकू मैंने इसलिए नहीं खरीदा था क्योंकि मुझे अब पिताजी के वापस आने का कोई यकीन नहीं था। मैंने सिर्फ उम्मीद ही नहीं छोड़ दी थी बल्कि यह भी यकीन करने लगा था कि पिताजी कभी थे ही नहीं।

...आँखों से कुछ देखे बिना मैं घिसटती चाल से सड़क पर चला जा रहा था। फिर पता नहीं किस कारण से मैं लौटकर दुबारा शहर की ओर चल पड़ा। मैं चलता जा रहा था और सिर्फ एक ही बात सोच रहा था—पिताजी के पैसों के बारे में। "डैडी के पैसे आ गए..." "डैडी के पैसों में से कुछ ले लो..." "डैडी के पैसे खत्म हो गए..." "डैडी के पैसे"। इस पैसे से हमने कई साल तक जीवन निर्वाह किया था। इस पैसे से हम रोटी, चीनी और दादी के लिए तम्बाकू खरीदते रहे थे। यह पैसे मेरे नाम पर आते थे। मैं इससे कागज-किताबें व पेंसिलें खरीदता था। पिताजी के पैसें से मैंने दस साल तक पढ़ाई की थी लेकिन 'पिता' का मतलब मैं अभी तक नहीं समझ पाया था।

मैं चलता जा रहा था और लगातार एक ऐसी चीज के बारे में सोचता जा रहा था जिसके बारे में पहले कभी नहीं सोचा था...लेकिन शायद वास्तव में कुछ भी नहीं हुआ था और सब कुछ पहले जैसा ही था—कहीं मैं सपना तो नहीं देख रहा था ? नहीं, यह सपना नहीं था—अब आगे से पैसे नहीं मिला करेंगे लेकिन फिर मैं लौटकर शहर क्यों चला आया था ?

मैं चलते-चलते रुक गया। जैसे किसी गहरी नींद से जागा होऊँ, मैंने अपनी आँखें पोंछीं और देखा कि मैं एक बड़ी-सी पीली इमारत के सामने खड़ा हूँ। इमारत पर अंकित है—'सामाजिक सुरक्षा विभाग'। अगर कहीं मुझ पर गाजी चाचा की नजर पड़ गई तो मैं कहूँगा क्या ?

मैं उनके कमरे के पास से आगे बढ़ गया।

...अपना फर हैट उतारे बिना मैंने उस आदमी का अभिवादन बड़े अजीबोगरीब ढंग से किया और बड़े साहसी ढंग से मैं मैनेजर के ऑफिस में घुस गया। जब मैं दरवाजे के अन्दर जा पहुँचा था तभी मुझे अपना साहस साथ छोड़ता प्रतीत हुआ। मैनेजर ने मेरी उलझन भाँप ली।

"आओ, बेटे, अन्दर आ जाओ !" उसने कहा। "आओ, बैठो।"

मैं बैठ गया।

"हाँ बेटे, बताओ, मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ ?"

कुछ कह पाने की हिम्मत न जुटा पाते हुए मैं खामोशी से बैठा रहा।

"तुम शायद काम के बारे में पूछने आए हो ?"

मुझे अपना आत्मविश्वास जागता-सा महसूस हुआ और मैंने उसकी ओर आशा भरी नजरों से देखा।

"जी-ह-हाँ...मैं...क्या आप मुझे कारखाने में काम नहीं दे सकते हैं ?"

"क्यों नहीं, जरूर। तुम्हारे जैसे समझदार लड़के को कारखाने में हमेशा काम मिल सकता है। तुम कहाँ के रहने वाले हो ?"

"सायुदला का।"

"किसके बेटे हो ?"

"सलीमा का।"

मैनेजर के होंठ काँपे और वह हँस पड़ा।

"सलीमा के बेटे ! हा-हा, गजब हो तुम !" वह हँसा लेकिन मुझे

सचमुच में उलझन में पड़ा देखकर वह खिड़की की ओर मुस्कराते हुए पलट गया। "बेटे, घबड़ाओ मत। मैं तुम पर नहीं हँस रहा हूँ। लेकिन यह बात ध्यान में बैठा लो—जब कभी तुमसे पूछा जाए कि किसके बेटे हो तो हमेशा बाप का नाम बताया करो।"

"मेरे पिता ? लेकिन आप उनको नहीं जानते हैं।" मेरे मुँह से बड़ी मुश्किल से शब्द निकले। मुझे फिर कहना पड़ेगा कि मैं पितृविहीन हूँ...

"उनकी मृत्यु हो चुकी है...वह लड़ाई में मारे गए थे..."

मैनेजर ने सावधानी से मेरी ओर देखा। उसके चेहरे से मुस्कराहट गायब हो चुकी थी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह कुछ कहना चाहता था लेकिन चुप्पी साधे था। तब मैंने जोरों से साफ-साफ आवाज में कहा—"मैं नजफ का बेटा हूँ।"

"वही न जो चिकित्सा सहायक था ?"

"जी...माँ ने मुझे यही बताया था।"

मैनेजर सिगरेट सुलगाकर ऑफि के कमरे में चहलकदमी करने लगा। फिर वह मेरे करीब चला आया।

"तुम्हारे पिता एक अच्छे आदमी थे।"

कुछ कहने को न सूझा तो मैं चुपचाप रहा। शायद मुझे उठकर चल देना चाहिए ? लेकिन काम तो बना नहीं था फिर मैं क्योंकर चला जाता ? माँ से मैं क्या कहूँगा ?

"क्या आप कुछ एडवांस नहीं..."

इससे आगे मैं कुछ भी नहीं बोल सका। और मैनेजर को भी शायद मेरी बात नहीं सुनाई दी थी।

"क्या आप मुझे कुछ एडवांस नहीं दे सकते...सौ रूबल या...तनख्वाह मिलते समय उसमें से कटवा लेंगे।"

और अपनी ही गुस्ताखी से हक्का-बक्का होते हुए मैंने डबडबायी आँखों से मैनेजर की ओर देखा। वह मेज के पास जाकर दुखी मुद्रा में खड़ा हो गया और पेंसिल से मेज पर खट-खट करने लगा।

"क्या मैं जाऊँ ? क्या सुबह से काम शुरू कर सकता हूँ ?"

"हाँ, हाँ, जरूर," उसने खोये-खोये अन्दाज में जवाब दिया।

मैं उठकर दरवाजे की ओर चल पड़ा। मुझे पक्का विश्वास था कि वह

आवाज देकर बुलाएगा। मैंने ठीक ही सोचा था। मैंने दरवाजे के हैण्डल की ओर हाथ बढ़ाया ही था कि वह एकाएक बोल उठा—"कहाँ चल दिए, बेटे ? तुमने कुछ कहा था न, शायद पैसों के बारे में।"

"जी, एडवांस...सौ रूबल..."

मुझे विश्वास था कि मैनेजर खजांची को बुलाकर एडवांस लिखने के लिए कहेगा और तब मुझे पैसे लेने के लिए लगभग दर्जन भर विभागों में भाग-दौड़ करनी पड़ेगी। लेकिन उसने ऐसा कुछ भी नहीं किया, बस जेब से सौ का नोट निकालकर मेरी ओर बढ़ा दिया। मैं सीधे बाजार जाने के लिए तेजी से दरवाजे की ओर चल दिया।

"हम तुम्हें केरीब का शागिर्द बहाल करेंगे !" मेरी पीठ के पीछे से वह जोरों से बोला। "एक महीने में पाँच सौ रूबल मिलेंगे।"

सिर्फ आधे घण्टे में मैंने सौ रूबल खर्च कर डाले। अब मैं घर जा सकता था। खुशी से छलकते हुए मैंने सीटी बजानी शुरू कर दी और उछलता-कूदता दौड़ पड़ा। "मैनेजर बड़ा अच्छा आदमी है !" मैं सोच रहा था। "तनख्वाह पाँच सौ रूबल ! और वह मेरे पिताजी को जानता है !"

पिताजी को याद करके मेरी चाल अपने आप धीमी पड़ गई। मैनेजर मेरे पिताजी को क्यों जानता व आदर करता था जबकि मैं उन्हें बिलकुल नहीं जानता था...

मुझे पता ही नहीं चला, मैं कैसे गाँव पहुँच गया। रात होने को थी। पशुओं के ढोर को हाँककर घर ले जाया जा रहा था और दोहने के लिए खड़ी गायें रंभा रही थीं। मैं कब्रगाह से होकर गुजरा और जीवन में पहली बार मुझे तनिक भी भय महसूस नहीं हुआ था। मैं थोड़ी देर के लिए दादी की कब्र के पास भी रुका जिससे कि उससे बात कर सकूँ।

जल्दी ही मैं घर पहुँच जाऊँगा। मैं दरवाजा खोलकर किसी व्यस्क आदमी की तरह धीमे-से चलकर कमरे में घुसूँगा और गोश्त वाला थैला ट्रंक के ऊपर रख दूँगा। माँ देखेगी कि थैले में एक पाउण्ड से ज्यादा गोश्त है और वह जरूर ही आग-बबूला हो उठेगी। उस समय बड़ा मजा आएगा जब मैं उसे सारी बातें विस्तार से बताऊँगा। पिताजी के घर से जाने के बाद से घर में लाकर हर महीने उसे पाँच सौ रूबल देने वाला कोई था ही नहीं।

लेकिन बात उस तरह पेश नहीं आई जिस तरह मैं सोचता आया था।

अभी मैं घर के बाहर ही था जब मुझे माँ दिखाई दे गई। शायद वह बड़ी देर से मेरी राह ताकती रही थी क्योंकि उसने बड़े ठण्डे ढंग से मेरे अभिवादन का उत्तर दिया था।

"इतनी देर तुमने कहाँ लगा दी ?" वह बोल पड़ी।

कमरे में बत्ती जली थी और समोवार में पानी उबल रहा था; माँ शायद उसे कई बार खौला चुकी थी। उसने मुझे ढालकर एक प्याली चाय दी। जैसे किसी परीक्षा के समय होता है, मैं उसी तरह उत्तेजित था और बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहा था कि माँ कब झोले को देखती है।

आखिर माँ ने झोला उठा लिया। यथासम्भव सामान्य दिखाई देने की कोशिश करते हुए मैंने मुँह फेर लिया। वह मुझसे अब पूछेगी या तब कि गोश्त इतना ज्यादा क्यों था।

"अभागे लड़के, तूने यह क्या किया है ?" वह गुस्से से बोली। "तूने तम्बाकू कहाँ से खरीद लिया ?"

भागकर मैंने झोला उससे छीन लिया। चीनी, मटर, गोश्त—सब कहीं तम्बाकू पड़ा था। मेरी ओर चौकसी से देखते हुए उसने कहा, "तूने तम्बाकू कहाँ से लिया ? किसने दिया तुझे ?"

मैं चुप था।

माँ ने फिर कुछ नहीं पूछा। हम चुपचाप एक-दूसरे के सामने बैठे रहे। कोई धीमे-धीमे स्वर में गा रहा था। माँ मेरी ओर देख रही थी और मैं खाली पड़े दादी के तम्बाकू के थैले की ओर देख रहा था।

आदमी का नाम

पिरवेर्दी वागिफ मार्ग पर बस से उतर पड़ा। बरसाती के जेब से कागज का टुकड़ा निकालकर पहले उस पर लिखे पते की ओर और फिर सबसे पास वाले मकान का नम्बर देखा। हाँ, मार्ग का नाम तो यही था। बस सड़क पार करके थोड़ी दूर आगे चलने पर ही वह फातुल्ला के मकान पर पहुँच जाएगा।

हल्के-हल्के लँगड़ाते हुए बूढ़ा पिरवेर्दी सँकरे फुटपाथ पर चल पड़ा। उसे कोई जल्दी न थी। पेंशनयाफ्ता लोगों के पास दुनिया भर का समय होता है। दरअसल, किसी अपरिचित कैमरामैन के यहाँ जाने का उसका

कोई इरादा न था। वह उसका नाम बाकू के अखबारों में प्रायः छपने वाले फोटो से ही जानता था जिस पर लिखा होता था—कैमरामैन—फातुल्ला वेम्बरेकेन्दली।" लेकिन इधर काफी समय से उसका नाम अखबारों से गायब रहा था। सच कहा जाए तो लम्बे अर्से से। हमेशा की तरह कल जब वह सागर तट वाली छायादार सड़क पर घूम रहा था, संयोगवश उसे एक पोस्टर दिखाई दिया था। पोस्टर पर लिखा था कि नगर के सम्मानित कैमरामैन फातुल्ला चेम्बेरेकेन्दली की 80वीं वर्षगाँठ के अवसर पर उनके चित्रों की एकल प्रदर्शनी आयोजित की जा रही है। इसका आयोजन पत्रकार संघ की स्थानीय शाखा ने किया था। पिरवेर्दी ने वहाँ जाकर प्रदर्शनी देखने का फैसला किया था।

बड़े-बड़े फ्रेमों में मढ़े फोटो दो छोटे कमरों की दीवारों पर पंक्तिबद्ध ढंग से टँगे थे। यह कैमरे द्वारा कैद सुदूर अतीत के और अब इतिहास का अंग बन गए पल थे। एक फोटो बाकू व साबुन्ची के बीच चलायी जाने वाली देश की पहली बिजली ट्रेन यात्रा के उद्घाटन-समारोह के समय का है। साबुन्ची सबसे पुराना तेल उत्पादक जिला था। धूप से जगमगाते रेलवे स्टेशन पर खड़े लोगों के कपड़े गरीबों के से हैं। लेकिन वे सभी मुस्करा रहे हैं और उनके हाथों में फूल व पोस्टर हैं। पहली बिजली ट्रेन स्टेशन से चलने वाली थी। उसकी बगल में आदरणीय गायक-कवि जब्बर कार्यागदी का फोटो था। उनका सिर तम्बूरे की ओर थोड़ा-सा झुका था। उस फोटो को देखकर पिरवेंदी को स्पष्ट, पंचम स्वर में सुपरिचित लोक गीत 'हैराती' का गायन सुनाई देता प्रतीत हुआ। यहीं पर एक और फोटो 1920 के दशक का था। इस फोटो में अपने भारी-भारी बुरके उतारकर फेंकती औरतें दिखाई दे रही थीं। यह फोटो उसके लिए अविस्मरणीय रहा था। उस समय यह फोटो बहुत-सी पत्र-पत्रिकाओं में बार-बार छपा था। फोटो में मिनी-स्कर्ट पहने तीन जवान लड़कियाँ सामने ललकारती खड़ी थीं।

पिरवेर्दी एक के बाद दूसरे फोटो को देखता धीमे-धीमे आगे बढ़ रहा था। लेकिन यह क्या है ? वह चौंककर रुक गया और दरवाजे के पास वाले फोटो को गौर से देखने लगा। किसी जल-तट पर निर्माण-स्थली का यह एक विहंगम दृश्य है। तरंगरोध के निकट भार-नौकाओं पर बड़ी-बड़ी चट्टानें लदी हैं। यत्र-तत्र पुराने ढंग के वाष्प-चालित उत्खनक दिखाई दे रहे हैं। तट पर कुदाल व गैंती लिये, काटते-पीटते लोगों की भीड़ लगी है। एक पहिये वाले ठेले पर बालू लादे दो नौजवान तस्वीर में सामने की ओर पटरी पर चले आ रहे थे। उनके चेहरे पहचाने जा सकते थे—खासतौर से बाएँ वाले नौजवान को साफ-साफ देखा जा सकता था। यह तो रिजवान है, उसका बचपन का दोस्त और एक ही गाँव का रहने वाला। पिरवेर्दी का दिल तेजी से धड़कने लगा। बहुत-बहुत साल पहले वे एक साथ ही बाकू आए थे और बीबी-एइबात खाड़ी को पाटने में दोनों ने साथ-साथ अपना पहला काम शुरू किया था। अब खाड़ी का नाम ईल्यीच खाड़ी रख दिया गया। और क्या दूसरा नौजवान अब्दुल्ला नहीं ? हाँ, अब्दुल्ला ही है। अब्दुल्ला इतना ताकतवर था कि अकेले ही सबसे बड़ी चट्टान उठाकर सबको चकित कर देता था। कम-से-कम उन दिनों, सुदूर अतीत के उन दिनों अब्दुल्ला यही सोचता था। आह, ईल्यीच खाड़ी। वह इसे कभी नहीं भूल पाएगा। उसे ठेलों की गड़गड़ाहट, पानी में खम्भे गाड़ने वाली मशीनों की धमधम और पम्पों की लगातार भिन-भिन आवाजें फिर से सुनाई देती प्रतीत हुई। एक बार फिर उसे चेहरे पेर प्रहार करती उत्तरी हवाओं का चुभता स्पर्श महसूस होने लगा। उसे कार्यस्थली के संचालक की याद हो आई। वह एक अन्धा था—इंजीनियर पोतोत्सकी।

बाद में सागर से छीन ली गई धरती पर तेल डेरिक खड़े किए गए थे। उसी जगह पर से पिरवेर्दी ने अपना लम्बा मजदूर जीवन शुरू किया था। उसने ईल्यीच खाड़ी में कुएँ खोदे थे, फिर लोक-बतान में और युद्ध से कुछ ही समय पहले जबकि अनुभव प्राप्त करके वह प्रसिद्ध ड्रिलिंग फोरमैन बन चुका था, अप्शेरोन के उत्तरी तट पर नये तेल क्षेत्रों में भी खोदाई की थी।

पिरवेर्दी फोटो पर से, अपने पुराने दोस्तों के चेहरे पर से आँखें नहीं हटा पा रहा था। बड़ा अफसोस है कि रिजवान लड़ाई के दौरान मोर्चे पर खेत आया था। अब्दुल्ला भी काफी पहले मर चुका था, किसी बीमारी ने उस ताकतवर आदमी को ग्रास बना लिया था। तस्वीर के पास लिखे अभिलेख को पढ़ने के लिए पिरवेर्दी करीब खिसक आया—"नये जीवन के निर्माता।" निस्सन्देह ! लेकिन तभी वह आग-बबूला हो उठा।

"देखते हो ?" पार्श्व में खड़े एक नौजवान से उसने कहा। "सोचोगे कि उनके नाम ही नहीं है !"

नौजवान ने उसकी ओर दृष्टि डाली और फिर बिना कुछ बोले अगली तस्वीर की ओर बढ़ गया।

"मैं इस कैमरामैन को जिन्दा नहीं छोड़ूँगा," बढ़ते गुस्से के कारण पिरवेर्दी बड़बड़ा उठा। "वे मर गए तो उनके पास भी भुला दिए गए।"

जब वह काफी उबाल खा चुका तो प्रदर्शनी के किसी आयोजक को तलाशने लगा।

"आप तैश में न आएँ," उसकी शिकायत सुनने के बाद प्रदर्शनी की प्रौढ़ावस्था वाली निर्देशिका ने कहा। "मैं आपको चेम्बेरेकेन्दली का टेलीफोन नम्बर देती हूँ, आप चाहें तो उनसे बातें कर सकते हैं।"

पिरवेर्दी ने फौरन वहीं से फोन किया। दूसरी ओर से आती आवाज बड़ी ही नम्र थी और हालांकि पिरवेर्दी ने बहस की तैयारी कर रखी थी, इसके बावजूद वह जल्दी ही ठण्डा पड़ गया। अपनी बीमारी के कारण घर से बाहर निकलने में असमर्थ होने की बात बताते हुए उसने पिरवेर्दी को अपने घर पर आने का निमन्त्रण दिया। "मुझे आपसे बातें करके बड़ी खुशी होगी," उसने कहा।

और इस समय पिरवेर्दी किसी आत्मसम्मानी पेंशनयाफ्ता की तरह छायादार सड़क की बेंच पर बैठने के बजाया इस सँकरी सड़क पर से गुजर रहा था। दुबारा मकान का नम्बर जाँचने के बाद वह एक पुराने मकान के अहाते में घुसा। धूप में कपड़े सुखाने के लिए अलगनियाँ लगी थीं। कोई नीली स्वीटशर्ट वाला नौजवान एक टूटी मोटरसाइकिल की मरम्मत में व्यस्त था। कोहनियों तक उसकी बाँहें ग्रीज से सनी थीं। आस-पास उकड़ूँ बैठे लड़के उसे काम करता देख रहे थे।

"कैमरामैन फातुल्ला कहाँ रहता है, बच्चो?"

ऊपर उनकी ओर देखने के बाद नौजवान ने एक लड़के से कहा—"इनको हमारे घर ले जाओ।"

तीसरी मंजिल पर पहुँचकर लड़के ने एक शीशेदार गैलरी की ओर इशारा कर दिया और वह खुद सीढ़ियों से नीचे की ओर दो-तीन सीढ़ियाँ एक बार में तय करता दौड़ पड़ा।

पिरवेर्दी सोचता खड़ा रह गया कि लड़कों को हमेशा जल्दी क्यों मची रहती है, वे हमेशा दौड़ते-भागते क्यों रहते हैं। इसका कारण क्या है ?

आगे बढ़कर उसने घण्टी बजाई। एक प्रौढ़ महिला ने दरवाजा खोला। पिरवेर्दी अपनी बरसाती व हर मौसम में पहना जाने वाला पुराना काराकुल खाल वाला हैट टाँगकर औरत के पीछे-पीछे एक मद्धिम रोशनी वाले कमरे में जा पहुँचा। चश्मा लगाए एक कृशकाय व्यक्ति पुराने चमड़ेदार सोफे पर बैठा था। उसके बदन में चमड़े व हड्डियों के अलावा कुछ भी न था। क्या यही एकदम सूखा-मुरझाया आदमी प्रसिद्ध कैमरामैन है ? पिरवेर्दी ने तो सोचे रखा था कि वह कोई लम्बा-तड़ंगा आदमी होगा और उसके कन्धों पर पेटियों से कई कैमरे लटक रहे होंगे।

फातुल्ला मुस्कराकर आगन्तुक का स्वागत करने के लिए उठ खड़ा हुआ। काले कार्डराई का सूट उसके बदन पर झूल रहा था। "मुझे अफसोस है कि आपको तकलीफ उठानी पड़ी," वह दुर्बल स्वर में बोला, "लेकिन अब मैं बाहर नहीं जाता हूँ। मुझमें शक्ति ही नहीं रही। टी.वी. के माध्यम से दुनिया की खबर रखता हूँ।"

"समय आदमी को क्या से क्या कर देता है !" पिरवेर्दी सोच रहा था। "एक समय था जब यह कैमरामैन कभी यहाँ, कभी वहाँ विराजमान रहता था।"

फिर वह कैमरामैन से बोला, "आप चिन्ता न करें, फातुल्ला साहिब।" और उसकी बगल में सोफे पर बैठ गया। "आपसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। आप पुरानी कहावत तो जानते ही हैं—बहादुर आदमी का नाम सुनना, उसे देखने से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। मैं यही बात इस तरह कहना चाहूँगा—अगर नाम मालूम हो गया तो मिलने की कोशिश करो।"

"चलिए, आपने अब हमें देख भी लिया लेकिन देखने को कुछ बचा ही नहीं है। ठीक है न ?" फातुल्ला दबी हँसी के साथ बोला।

"हम जोड़म-जोड़ी ही हैं। मैं खुद सत्तर पार कर चुका हूँ।"

"हाँ, समय को कोई नहीं रोक सकता है। कल आपका गुस्से से भरा फोन आने के बाद मैंने प्रदर्शनी कक्ष को फोन करके अभिलेख बदल देने के लिए कहा था। अब उस फोटो के नीचे लिखा है—'ईल्यीच खाड़ी, 1923। (सामने की ओर)—रिजवान इस्माइलोव तथा अब्दुल्ला अब्दुल्लायेव'।"

"हाँ, अब ठीक है। आदमी का नाम इसलिए नहीं होता कि मरने के बाद भुला दिया जाए।"

"आप ठीक कहते हैं। बिलकुल ठीक।" फातुल्ला ने हामी भरी। "इसमें पहले कभी यह फोटो प्रकाशित नहीं हुआ था। आप जानते ही हैं, कि जीवन काल में हर एक कैमरामैन के पास तस्वीरों का पहाड़ ही लग जाता है। लेकिन उनमें से कुछेक ही छपती हैं। पत्रकार संघ के लोगों ने जब मुझसे प्रदर्शनी लगाने की बातचीत की तो इकट्ठे मिलकर हमने हजारों फोटो देख डाले। बेशक, छपे फोटुओं के अभिलेख भी थे। लेकिन जो फोटो छपे नहीं थे उनके लिए गोल-मटोल से अभिलेख देने पड़े। मुझे बड़ी खुशी है कि आपने प्रदर्शनी देखी और हमारा ध्यान उस फोटो की ओर आकृष्ट किया।"

"मुझे खुशी है कि आपके काम आया। मैं शायद थोड़ी बेअदबी से पेश आया था..."

"नहीं, नहीं, बिलकुल नहीं। आपकी बात सोलह आने सच थी। पिरवेर्दी साहिब, मैं आपसे किसी दूसरी चीज के बारे में भी पूछना चाहता था। मेरे फोटो अलबम छापने की योजना है। सम्पादकों ने सौ फोटो चुने हैं और उनमें से बहुत-से फोटो मैंने ईल्यीच खाड़ी में उतारे थे। मैं इसी के बारे में आपसे पूछना चाहता था। शायद आपको फोटुओं में अंकित लोगों के नाम आज भी याद हों।"

"आइए, देखते हैं।"

नमदे के स्लिपर फर्श पर घिसटते हुए फातुल्ला आलमारी के पास चला गया। एक फोल्डर से बहुतेरी तस्वीरें निकालकर उसने मेज पर फैला दीं। "यह फोटो सम्पादक को बहुत पसन्द आया है। वे इसको कवर पर छापना चाहते हैं।"

वह एक लम्बे नौजवान का फोटो था जो एक चट्टान के नीचे सब्बल डालने की कोशिश कर रहा था। वह अपने काम में इस तरह डूबा था कि फोटो उतारे जाने की उसे कोई खबर न लगी थी। जब पूरा दमं लगाकर वह काम कर रहा था, उसका फोटो उतार लिया गया था। कमीज के अन्दर उसकी उभर आई मांसपेशियों को साफ-साफ महसूस किया जा सकता था।

पिरवेर्दी ने फोटो की ओर देखकर जल्दी-जल्दी आँखें झपकाईं।

"मैं आपको इसके बारे में बताता हूँ," फातुल्ला ने बात आगे बढ़ाई। "यह फोटो उतारने के बाद मैं निर्माण स्थल के दूसरे हिस्से में चला गया था। अचानक मुझे लोगों की चीख-पुकार सुनाई दी। कोई दुर्घटना हो गई

थी। मैं फौरन वापस दौड़कर वहीं आ पहुँचा। फोरमैन ने बताया कि गाड़ी से चट्टानें उतारी जा रही थी कि इतने में कुछ चट्टानें किसी मजदूर के पैर पर गिर पड़ीं। मजदूर का पैर टूट गया था। मुझे शायद पूरी तरह तो नहीं लेकिन इतना जरूर याद है कि एक स्ट्रेचर पर उसी नौजवान को ले जाया गया था जिसका फोटो मैंने कुछ ही देर पहले लिया था। मुझे बड़ा खराब महसूस हुआ था। फोटो बड़ा अच्छा आया था लेकिन मैं उसे अपने अखबार में नहीं दे सकता था। उस मजूदर का क्या हुआ, मुझे मालूम नहीं था। शायद वह मृत्यु शय्या पर पड़ा हो तो उसकी तस्वीर अखबार में छपवाना मुझे उचित प्रतीत नहीं हुआ। यह फोटो करीब आधी सदी से मेरी फाइल में पड़ा रहा है। क्या आप इस आदमी को पहचान सकते हैं?"

पिरवेर्दी कुछ भी नहीं बोला वह खामोश था।

"मैं समझता हूँ। बहुत साल बीत चुके हैं। इतने समय बाद किसी आदमी का नाम याद करना असम्भव है। मैंने अपने सभी नोटबुकों में भी नाम की तलाश कर ली है। लेकिन व्यर्थ...सचमुच यह बड़े अफसोस की बात है।" फातुल्ला ने ठण्डी आह भरी।

वह बोलता रहा लेकिन पिरवेर्दी को उसकी एक भी बात सुनाई नहीं दी। फोटो की ओर देखते हुए वह अपनी टाग रगड़े जा रहा था जिसमें एकाएक दर्द शुरू हो गया था और इसके साथ ही उसे लगा कि ईल्यीच खाड़ी के ऊपर बहने वाली तेज उत्तरी हवाओं का उससे स्पर्श हो आया।
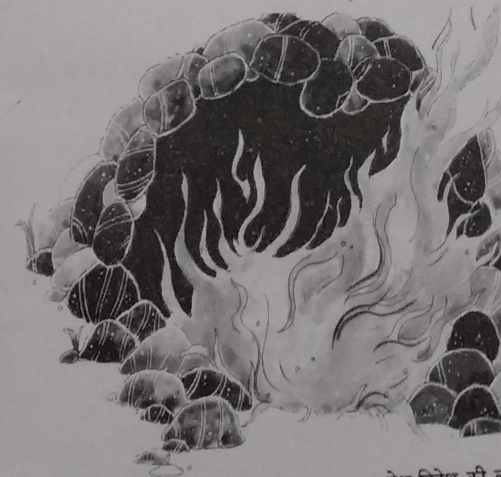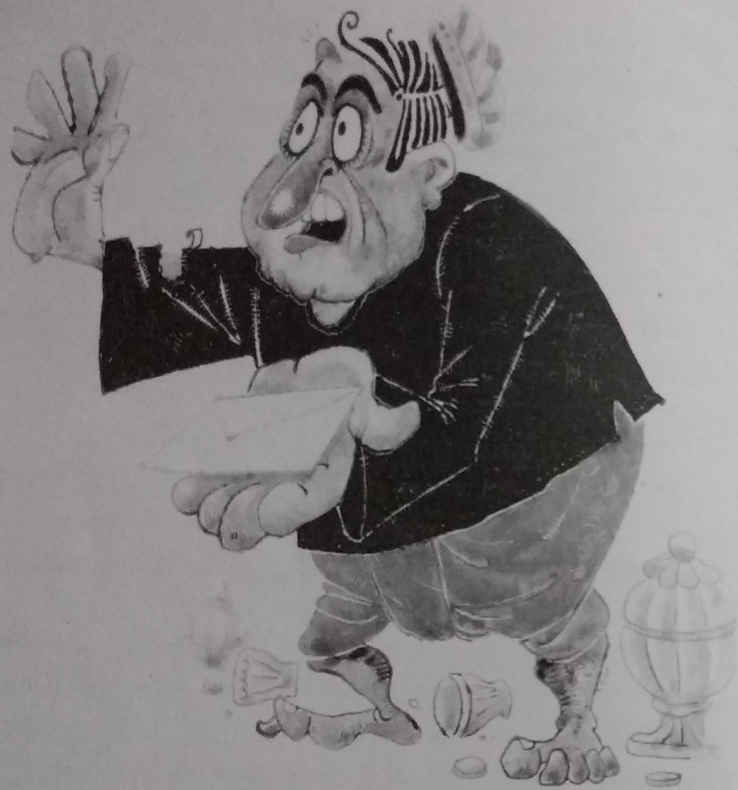
एक उलझन भरी रात

अध्यापिका के सामने पतले रबड़ बैण्ड से बँधी ढेर-सी कॉपियाँ पड़ी थीं। बालपेन से जबतब चिह्न लगाती, वह प्रत्येक छात्र की कॉपी देख रही थी। इस काम का कोई ओर-छोर न था। वह धैर्य से इस काम में लगी थी।

मेज की दूसरी ओर बहन-भाई बैठे थे। माँ जब तक कॉपियों को जाँचने में लगी थी, दोनों एक-दूसरे को पहेलियाँ बुझा रहे थे—कुछ लिखकर, कुछ की तस्वीरें बनाकर। बॉलकनी की ओर वाले दरवाजे के बाएँ, एक कोने में मेज पर पर टेलीविजन रखा था। वह घर का एक सदस्य बन चुका था अपना काम खुद चलाता था।

बच्चों के पिता बॉलकनी में बैठे थे। जैसे-जैसे एक कतार में खड़ी पाँचमंजिली इमारतें अपने ही प्रकाश में लिप्त होती गईं, सूर्यास्त के एक घण्टे बाद तक शुबान पहाड़ियों की दूधिया रेशम की जाली देखी जा सकती थी। पहाड़ों के पार अभी भी दिन की रोशनी प्रतीत होती थी मानो वे पृथ्वी के दूसरे हिस्से में हों।

दाईं ओर दो इमारतें विशाल दरवाजे के दो पटों की तरह काली दीख रही थीं। उनसे परे नगर का छोटा-सा हिस्सा दमकता दिखाई देता था। उससे भी आगे तेल शोधशाला के ऊपर दिनरात एक चिरन्तन टॉर्च जलती रहती थी।

बॉलकनी में बैठे पिता पहाड़ियों को झुटपुटे में विलीन होते देख रहे थे। कभी-कभी उन्हें बच्चों वे टेलीविजन की आवाजें सुनाई दे जाती थीं।

अध्यापिका कुछ बोली। शायद वह उससे कुछ पूछ रही थी। यह देखकर कि पिताजी ने नहीं सुना है, बेटे ने जवाब दिया, ''हाँ, वहाँ पर है।''

थोड़ी ही देर बाद दूसरा सवाल पूछा गया, ''सागर तट वाले पार्क में क्या कोई 'सादको' कैफे है ?''

इस बार बच्चे चुप रहे। पल भर इन्तजार करने के बाद पिता ने जवाब दिया, ''हाँ।''

''कहाँ पर ?''

''वीथिका से सागर की ओर जाने वाले सेतुबन्ध के एकदम अन्त में। मैं यह भी बात सकता हूँ कि यह सागर की राजकुमारियों की तरह रहस्यमय और खूबसूरत है। वहाँ धूम्रपान या मद्यपान की इजाजत नहीं।''

कुछ समय बीतने के बाद अध्यापिका ने एक और सवाल पूछा, ''क्या वहाँ फलों के पेड़ हैं ? सागर तट वाली वीथिका में सेब और नाशपाती के पेड़ हैं ?''

''वहाँ फलों का एक बाग लगाया गया है।''

''वहाँ फलों का एक बाग लगाया गया है।'' बच्चों के पिता हिचकिचाए। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि इन सवालों के पूछने के पीछे मंशा क्या थी और इन्हें पूछने की जरूरत ही क्या थी।

''और 'वीनस' कहाँ है ?''

पिता उठ खड़े हुए और कमरे में जाकर मेज के पास चले आए।

नोटबुक पर से पेंसिल हटाकर अध्यापिका ने बात स्पष्ट की, "मैंने सागर-तट के बारे में एक लेख लिखने के लिए कहा था।"

पिता ने बाँह फैलाकर उसके सामने रखी एक कॉपी उठा ली। उन्होंने उस पर नजर डालने के बाद कहा—"मेरे ख्याल से इसमें गलतियाँ हैं।"

"मैंने अभी पूरी तरह देखा नहीं है।"

"इन लाल पंक्तियों का मतलब क्या है ?"

"हम गलतियों को लाल पेंसिल से सिर्फ चिह्नित कर देते हैं ताकि छात्र खुद गलती का पता लगा ले।"

उसने उलझन भरी दृष्टि कॉपियों पर डाली। कोई और सवाल पूछने के बजाय वह मानो गिला करती बोली, "छात्र जो कुछ लिखते हैं, उनमें अर्थ ढूँढ़ना असम्भव ही है।"

अध्यापिका ने कॉपियों के ढेर पर दृष्टि डाली, गहरी साँस छोड़ी और फिर अपने काम में लग गई। वह ढेर से एक कॉपी उठा लेती, पन्ने पलटकर उस तारीख का गृह-कार्य निकालती और सावधानी से प्रत्येक सन्दिग्ध पंक्ति का एक-एक अक्षर, एक-एक शब्द जाँचती; उनमें से प्रत्येक अछूता, अरूप पहाड़ी रास्ता-सा था। सफेद कागज पर बैंगनी स्याही में लिखे अक्षर उसे अपने बच्चों की तरह प्यारे थे। फिर भी लेखों को पढ़ते-पढ़ते अध्यापिका ऊब जाती थी। जैसे-जैसे वह कॉपियों को देख-देखकर एक ओर रखती जा रही थी, वह अधिक-से-अधिक क्लान्त दिखाई दे रही थी। कभी-कभी कलम उसके हाथ से गिर पड़ती और बोझिल पलकें बन्द हो जातीं।

हर बार जब वह कॉपियाँ देखने बैठ जातीं उसकी मदद करने की चाह पैदा होती थी उसमें। लेकिन कॉपियों के बड़े ढेर को देखकर वह भी भयभीत हो उठता था और आखिरी कॉपी के जाँचे जाने तक बेसब्री से कहना चाहिए घबड़ाहट से इन्तजार करता रहता। कुछ भी हो बीवी को खुद ही सारी कॉपियाँ जाँचनी थीं। पति उसके काम को कठिन समझता है, यही बात उसके लिए अत्यन्त सन्तोषकारी थी।

या शायद बात कुछ और है ? जब पाँचमंजिली इमारतों की रोशनियाँ एक-एक करके बुझ जाएँगी और बॉलकनियाँ किसी खामोश, धूमिल स्टेशन पर खड़ी तन्द्रिल रेलवे डिब्बों की तरह प्रतीत होने लगेंगी तब उस रात की गुमसुम विजनता में कोई चमत्कार होगा ? अध्यापिका के सामने रखे बच्चों

के लेख हरे-भरे जंगलों, ओससक्ति सुवासित वनपथों में बदल जाएँगे; और जब मीठे सपनों से परिपूर्ण उसका मस्तक मेज पर झुक पड़ता है, तब बच्चों की आनन्दपूर्ण आवाजें व चिड़ियों के गीत उसे कानों में सुनाई देंगे। और शायद यह उसके जीवन के सर्वाधिक अनमोल दिन होंगे।

बेटी ने पिता की ओर कोमलता से देखा, "मैं आपको एक पहेली बुझाऊँगी। आप बुझा सकते हैं ?"

"पहले इस लेख को पढ़ लेता हूँ फिर तुम्हारी पहेली बूझूँगा।"

"नहीं, पहले पहेली बूझिये। बाद में लेख पढ़ लीजिएगा।" यह देखकर कि पिताजी उसकी बातें सुन रहे हैं, लड़की ने कागज पर चित्र-पहेली खींचना और पहेली को जोरों से बोल-बोलकर पढ़ना शुरू कर दिया। "यह एक पेड़ है। सेब का पेड़। लोग सेब तोड़ने आए हैं। पेड़ की पहली फुनगी पर ही एक बन्दर बैठा है जो लोगों को सेब तोड़ने नहीं देता है। बताइए, लोग फल कैसे तोड़ सकते हैं ?" पिता ने कागज पर नजर दौड़ाई। बेटा हँस पड़ा। तस्वीर के कारण पिता को चकराते देखकर उसे बड़ा मजा आ रहा था। क्यों नहीं, अगर पहेली का उत्तर मालूम हो तो पहेली बड़ी आसान लगती है।

"ध्यान से सोचिए !" पहेली का उत्तर लड़के की जबान पर था। हँसते हुए अपने पिता को जल्दी से बूझने के लिए कहा।

लड़की ने सोचा कि पिता को पहेली अच्छी तरह नहीं सुनाई दी। छात्रों को पाठ समझाती अध्यापिका की तरह लड़की पिता को जोर-जोर से बोलकर समझाने लगी, "क्या आप नहीं बूझ सकते हैं ? तो मैं आपको बता दूँगी।"

दोनों हँस पड़े। पिता लजा गया। अपने जीवन में वे पहली बार उलझन में पड़े थे।

"बच्चे पत्थर उठाकर बन्दर पर फेंकते हैं। बन्दर सेब तोड़-तोड़कर बच्चों पर फेंकता है। बच्चे सेब जमा करके फिर पत्थर फेंकते हैं। बन्दर और भी सेब तोड़कर उन पर फेंकता है। बच्चे सेब बटोरकर चले जाते हैं। समझे ? क्या एक और पहेली बुझाऊँ ?"

"बस एक ही काफी है।" यह कहकर पिता एक कॉपी में लिखा लेख पढ़ने लगा।

"समुद्र तट बहुत खूबसूरत है। लोग वहाँ घूमते व आराम करते हैं। वे 'वीनस' के पास बोटिंग करते हैं। अगर नहरों की ओर ऊपर से, पुलों से देखा जाए तो नहर नदियों की तरह और नाव भाप से चलने वाले जहाजों की तरह दिखाई देती हैं। झाड़ियाँ व दूसरे पौधे बहुत कुछ जंगल के समान दिखाई देते हैं..."

"क्या यह अच्छा छात्र है ?"

"हाँ, अच्छा है।"

"वर्णन काफी अच्छा करता है। एकदम ठीक, हूबहू।"

"बच्चे वीथिका को मुझसे ज्यादा अच्छी तरह से जानते हैं।"

पिता बाहर बॉलकनी में चला गया। बस्ती में आस-पास सटी-सटी बनाई गई ऊँची इमारतों के पास ही निजी मकान थे जिनसे रोशनी धरती पर पड़ रही थी। उनके पीछे कोई भी इमारत न थी। अपरिमित कुहरे के बीच मकान किसी द्वीप की भाँति दमक रहा था। "वीथिका को बच्चे मुझसे ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं।" अध्यापिका ने उसकी मलामत नहीं की थी या कोई संकेत नहीं किया था। वह बस यूँ ही बिना किसी परोक्ष अभिप्राय के, सहज भाव से बोली थी। क्या उसने जानबूझकर यह विषय चुना था ? छात्र लेख लिखेंगे; वह उनकी कॉपियाँ घर लेकर आएगी और शाम को उन्हें मेज पर रखकर जाँचना शुरू करेगी, फिर बच्चों व पिता को चकित करने वाला सवाल पूछा जाएगा...नहीं, ऐसा नहीं हो सकता है। उसकी बीवी इतना चक्करदार काम नहीं करेगी। वह पैंतरा बदलने में माहिर न थी। या शायद यह विषय उसके दिमाग में अपने आप, सहज रूप से आया हो...अध्यापिका ने तो ऐसे हश्र की बात भी नहीं सोची होगी।

दोनों बच्चे बॉलकनी में उसके पास आ गए। वे अपने आपमें मग्न थे। लड़की के हाथ में कागज व पेंसिल थी। वह पिता को एक और पहेली बुझाना चाहती थी। लेकिन पहलकदमी जताते हुए भाई ने उसके हाथों से कागज छीन लिया। पिता ने पंजों के बल खड़े होकर बॉलकनी की बत्ती जला दी। मेज पर कागज रखकर लड़के ने कोई रेखांकन शुरू कर दिया। "यह रहे चार खाने। आप इन पर 'गालस्तुक" शब्द इस तरह लिखिए कि हर खाने में सिर्फ एक अक्षर हो।

कागज की ओर देखकर पिता को पाला-सा मार गया। आज की शाम वह कुछ सोच ही नहीं पा रहा था।

लड़के ने कागज वापस खींच लिया। उसने हर खानें में शुरू के एक-एक अक्षर लिखा। फिर सिर उठाकर पिता की ओर देखा। पिता ने चकित होकर बेटे को इस तरह देखा कि नजर में धमकी का भी आभास मिले। लड़का सभी लाइनों को काम में ला चुका था लेकिन तीन अक्षर अभी भी बचे थे। तीनों को अंकित कैसे करेगा ? निस्सन्देह, आपस में पहेलियाँ बुझाना बड़ा ही दिलचस्प था। इससे आदमी में सोचने की ताकत व चतुरता बढ़ती थी। आदमी कल्पना-विलास कर सकता था। लेकिन धोखा व असंगतियाँ वर्जित थीं।

"और बाकी तीन अक्षर कहाँ लिखोगे ?"

लड़के ने तीन अंगुलियों के सिरे जोड़कर पिता की ओर परिचित अन्दाज में हाथ बढ़ा दिया और ललाट पर बड़े धीमे ढंग से ठकठक कर दिया। ठकठक की आवाज बड़ी धीमी, लगभग ना सुनाई देती-सी थी।

"यह रहा आपका तुक' !"

बच्चे अन्दर चले गए। वह भी उनके पीछे-पीछे अन्दर आकर बैठ गया। जाँची कॉपियों को हाथों में उठाकर वह उनके पन्ने उलटने लगा। प्रत्येक छात्र ने यथासम्भव सागर तट वाली वीथिका का सही वर्णन किया था। लेकिन उनकी शिक्षित अध्यापिका जिसे वे माँ के समान प्यार करते थे, उसके लेखों से उलझन में पड़ गई थी हालांकि ऐसी कॉपियाँ वह दस से अधिक वर्षों से जाँचती आ रही थी। उसकी उलझन का कारण यह था कि इस विषय के बारे में उसे पूरी जानकारी न थी।

"तुमने ऐसे विषय पर लेख लिखने के लिए कहा जिसके बारे में तुम्हें खुद नहीं मालूम है और अब कठिनाई में पड़ी हो।"

अध्यापिका ने नजरें नहीं उठाईं। वह अपने काम में बहुत व्यस्त थी। कहीं किसी ने कुछ छोड़ दिया हो, कहीं कोई गलती न रह जाए—तो दुनिया ही धसककर गिर पड़ेगी। किसी दूसरे आदमी से गलती हो तो उसका मतलब है किसी अक्षर का छूट जाना या कौमा गायब हो जाना। लेकिन शायद इससे भी तकलीफ हो सकती है। कोई अलक्ष्य बात छूट जाए। क्या यही बात है, अध्यापिका ?

वह आहत हो गया था लेकिन उसने अपना स्वर अधिक-से-अधिक

कोमल रखने की कोशिश की, "क्या तुमने यह विषय इरादतन चुना था ?"

"नहीं।"

"शायद तुमने सागर तट पर सैर करना चाहा ?"

"नहीं।"

वह बुरी तरह उलझी थी मानो न तो कभी समुद्र देखा था, न समुद्र-तट से ही परिचित हो; मानो पन्द्रह साल पहले जब वह छात्रा थी, उसके साथ नौका-क्लब के पास कभी बेंच पर बैठी ही न हो। और शायद किसी दूसरी ने सागर के पारदर्शी जल में झाँककर देखा था। शुरू की मुलाकातों में जो लड़की सिर्फ तीन-चार शब्द बोली थी, वही लड़की जिसकी जबान उस दिन तेजी से चल रही थी, शायद कोई और थी। और वह बोली थी, "तट पर पहुँचने वाली लहरें हमेशा के लिए वहीं रह जाती है।। वे फिर कभी सागर में वापस नहीं लौटती हैं।" फिर पानी में अँधेरा छा गया था। सागर के अपरिमित अँधेरे में किसी लहर के काँपने व छपाके से आवाज करने की गूँज हुई। वह उठ खड़ी हुई। वह उसके साथ ही छात्रों की शयनशाला तक आया।

और अब उसे सिर्फ एक सागर की पहचान थी—छात्रों की कॉपियों के इस सागर की। उसे सिर्फ एक तट का ज्ञान था—उन कॉपियों के आखिरी पृष्ठों का।

टेलीविजन बन्द करके बच्चे सोने चले गए थे।

पिता उठकर फिर बॉलकनी में चला आया। उसने बत्ती बुझा दी। बॉलकनी से एक ठण्डी, हल्की ब्यार गुजर गई। बॉलकनियों के सामने खड़े लम्बे पोपलर वृक्षों के पत्ते सरसरा रहे थे। कुछ देर पहले सुबह की तरह दमकती शुबान पहाड़ियाँ, जिसे उसने 'दुनिया का दूसरा हिस्सा' कहा था, कब की अँधेरे में गुम हो चुकी थीं। कारखाने के उच्छिष्टि से जलने वाली टॉर्च के पूरब में धुएँ का बादल उठ-उठकर उत्तर में गायब हो रहा था।

शुबान पहाड़ियों के अँधेरे में गुम होने के बाद हर दिन के खत्म होने के साथ आने वाली रातों में से एक ने पहेली का रूप धारण कर लिया था। शायद इस पहेली का उत्तर इतना सरल था कि कोई बच्चा भी हल कर ले। बस सिर पर अंगुली के सिरे ठोंकना भर चाहिए—"तुक।"

लहरों में बसी आबादी

नेफ्त्यानिये काम्नी पहुँचना इतना आसान नहीं। कैस्पियन अपनी जल-यात्रा की आज्ञा तभी देता है जब साफ, खुशगवार मौसम हो और तभी आप आवेशयुक्त सगार पर फैलते कल्पनातीत शहर तक पहुँच सकते हैं।

बाकू और नेफ्त्यानिये काम्नी के बीच 'एम. एस. बाबाजादे' नामक जहाज आता-जाता है। इसका नामकरण उस आदमी पर किया गया है जिसकी साहसपूर्ण अन्तर्दृष्टि ने पहली बार सगार के गर्भ में छिपे तेल भण्डार तक पहुँचने की कोशिश की थी, और जो अब जहाज के रूप में नया बाना धारण करके वही कठिन यात्रा बार-बार करता है। 'एम. एस.

बाबाजादे' बाकू से तेलकर्मियों को सीधे सागर से निकलते डेरिकों, कुसुमित उद्यानों, कैण्टिनों, क्लब, चिकित्सा-केन्द्र, पुस्तक-दुकान, मजदूर आवासों वाले शहर में ले जाता है। छुट्टियों के दिन वह मजदूरों को शहर, उनके परिवारों और मित्रों के बीच वापस ले आता है।

जहाज के केबिनों में से एक में हमें एक प्रदर्शनी भी देखने को मिली जो उस असाधारण सोवियत भूगर्भवेत्ता को समर्पित है जिसका पूरा जीवन 'काले सोने', अप्शेरोन की मुख्य सम्पदा से जुड़ा था।

जहाज से सागर तटीय खानलार बस्ती के परिदृश्य दिखाई देते हैं। इसका नामकरण 1907 में शहीद हुए क्रान्तिकारी खानलार सफारालियेव के नाम पर हुआ है।

किसी समय प्रसिद्ध तेल विशेषज्ञ आगा नेइमतुल्ला ने वहाँ पर कई ढालवें कुओं की खुदाई की थी लेकिन उन्हें उस समय बड़ी निराशा हुई जब तेल की जगह सिर्फ गर्म पानी व कीचड़ ही हाथ लगा। हालांकि विशेषज्ञों ने सिद्ध किया कि यह स्वास्थ्यप्रद कीचड़ है और इसकी मदद से गठिया व दूसरी बीमारियों का इलाज किया जा सकता है। बस्ती में कीचड़ से इलाज करने वाला एक क्लीनिक खोल दिया गया जो आज पूरे जनतन्त्र में प्रसिद्ध है।

लेकिन स्पष्ट रूप से यह कीचड़ तेल का सहचर था। प्रसंगवश बता दूँ कि नफ्तालान गाँव में निकाला जाने वाला नाफ्तालान तेल भी कई आरोग्यकारी तत्त्वों से परिपूर्ण है। इसमें चमत्कारी औषधीय गुण हैं–परीकथाओं में वर्णित जीवन-जल की तरह। देश के सभी हिस्सों से गठिया से पीड़ित लोग नाफ्तालान आते हैं और स्वस्थ होकर जाते हैं।

नाव धीरे-धीरे आगे बढ़ गई और किनारा कुहरे में विलीन हो गया। और मानो हमारी उत्साहपूर्ण प्रतयाशा पूरी करने के लिए ही पहले डेरिक पानी में उठ खड़े हुए।

इस सबकी शुरूआत तब हुई थी जब सागर के पेटे में नीचे दूर तक कुओं की ढालवीं ड्रिलिंग की खोज हुई। तेलकर्मियों ने समुद्र में मिट्टी भरे कंक्रीट के द्वीप बनाने की कोशिश की। बाबाज़ादे के सुझाव पर बहुत-से पुराने, टूटे-फूटे जहाजों के ढाँचों के लंगर समुद्र में डाल दिए गए। उन्हीं से दूर सागर में पहले कुओं की ड्रिलिंग की गई और वे आज भी काम कर रहे

हैं। फिर भी, नेफ्त्यानिये काम्नी का जन्म उस समय हुआ जब मंचिका प्रणाली की खोज हुई और हल्के, ठोस ढाँचे शक्तिशाली टेकों का सहारा लेते हुए दूर सागर तक पहुँच पा सके। यह बाकू से सौ किलोमीटर दूर है। इतनी दूर समुद्र के पेटे में कुआँ ड्रिल करने की हिम्मत किसे हुई होती ?

तीन घण्टे से कुछ ज्यादा की यात्रा के बाद हम एक असामान्य बस्ती के लोगों के बीच पहुँचे जो अपने आपमें आधुनिक इंजीनियरिंग का एक चमत्कार है।

हम नाव से दिखाई देने वाले पहले डेरिक पर पहुँचे। इसके साथ लगे एक संगमरमरी फलक पर कुछ मिटे स्वर्णाक्षरों में अंकित है–"पहला कुआँ, इसकी ड्रिलिंग ऑपरेटर कावेरोच्किन द्वारा की गई। इसके साथ ही दूर सागर में तेल-उत्पादन शुरू हुआ। पहली बार तेल 7 नवम्बर, 1949 को निकला।"

कावेरोच्किन का नाम पूरे अजरबैजान में सुविख्यात है क्योंकि वह उस पहले दल के नेता थे जिसने कैस्पियन सागर में पैर जमाने में सफलता पायी थी। प्रचण्ड आँधियों और हवाओं से जूझते हुए लगातार तीन महीनों तक दिन-रात काम करके उन्होंने अपने साथियों के साथ पहले तेल-कूप की ड्रिलिंग करके कैस्पियन के गर्भ में छुपे खजाने का द्वार खोल दिया। प्रकृति के साथ उस दुर्धर्ष संघर्ष में जब आँधी की हवाओं की शक्ति तेरह प्वाइंट पर पहुँच गई थी, कावेरोच्किन, सादीखोव और गासानोव वीर गति को प्राप्त हुए...

हाँ, कैस्पियन प्रायः अत्यन्त निर्मम हो जाता है। आज भी जब कि नेफ्त्यानिये काम्नी वास्तव में एक बस्ती का रूप धारण कर चुका है और सबकी सुरक्षा के लिए हर तरह के उपाय किए जाते हैं, कभी-कभी जबर्दस्त कठिनाइयाँ सामने आ खड़ी होती हैं। मंचिकाओं ने चौड़ी सड़कों का रूप धारण कर लिया है, बस्ती के केन्द्र में एक लंगर चौक है जहाँ एक भोजनालय है, क्लब है और रात में अच्छी तरह रोशन किताबों की एक दुकान है। धरती पर से लाई गई मिट्टी में पेड़ उगते हैं और फूल खिलते हैं। सच कहा जाए तो परी-कथा में वर्णित बीच समुद्र में किसी उद्यान की तरह। सोवियत सत्ता की 50वीं वर्षगाँठ के समारोहों के लिए क्रीड़ा मण्डपों तथा पेड़ों की छाया तले बैठने के लिए बेंचों वाली एक छायादार चौड़ी सड़क का उद्घाटन किया गया।

जिस दिन हम वहाँ पहुँचे, कैस्पियन में भव्य शान्ति थी, रवि-रश्मियों में वह बड़े उल्लास से दमक रहा था। वह विश्वास करना कठिन था कि बिस्के की खाड़ी के बाद यह दुनिया का दूसरा अशांत समुद्र है। शायद इसका कारण यह था कि बहादुर तेलकर्मियों ने उसे वशीभूत कर लिया था ?

इस समय आकर्षक, उदार कैस्पियन न सिर्फ तेल में समृद्ध है बल्कि यहाँ मछलियों की सर्वोत्कृष्ट किस्में भी पाई जाती हैं—खासतौर से स्टर्जन मछलियाँ। सच तो यह है कि दुनिया में मछली के जितने काले अंडे उत्पादित होते हैं उनका सबसे बड़ा हिस्सा यहीं उपलब्ध होता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्रकृति ने हमारे अप्शेरोन प्रायद्वीप को समृद्ध बनाने में पूरी उदारता से काम लिया है। जैसे जाफरान को ही लीजिए—इसका एक ग्राम शब्दशः उतने ही सोने के बराबर है।

बहरहाल, विषयान्तरणों की कोई जरूरत नहीं—नेफ्त्यानिये काम्नी की यात्रा स्वयं अत्यन्त रुचिकर है।

डेरिकों का यह विराट समूह विश्वसनीय हाथों में है। इन क्षेत्रों की जिम्मेदारी कावेरोच्किन के एक शिष्य, दूर समुद्र में ड्रिलिंग में परम निष्णात, सोवियत संघ की सर्वोच्च सोवियत के प्रतिनिध कुर्बान अब्बासोव पर है। अपने वरिष्ठ मित्र की मृत्यु के बाद उन्होंने उसका स्थान ग्रहण करके समुद्र में दूसरे कुएँ की ड्रिलिंग की।

डेरिकों से कुछ दूरी पर मुझे समुद्र से उभरता एक बेलनाकार ढाँचा दिखाई दिया। वह किसी तेल-टंकी की तरह दिखाई देता था लेकिन बहुत छोटा-सा प्रतीत होता था।

''उस छोटी-सी तेल-टंकी में ठीक बीस हजार टन तेल अटता है,'' मेरी जिज्ञासा भरी दृष्टि को भाँपकर पास से गुजरते एक तेल कर्मी ने कहा।

''असम्भव !''

''इसकी ऊँचाई बारह मंजिली इमारत जितनी है,'' यात्रा में मित्र बने एक व्यक्ति ने बताया। ''इसका बहुत थोड़ा-सा हिस्सा ऊपर है, लगभग चालीस मीटर तो नीचे है।''

कुछ देर खामोश रहने के बाद उसी ने पूछा—''क्या आपने पम्पिंग स्टेशन देखा ?''

उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना वह मुझे उस पम्पिंग स्टेशन पर ले गया जो हौजों और टैंकरों में निकर्षित तेल पम्प करता है। यह सब बड़ा सरल-सहज प्रतीत होता था लेकिन कल्पना की उड़ान भरने वाले जुल वेर्न जैसे महा कल्पना विलासियों के भी शायद छक्के छूट जाते।

मैं नेफ्त्यानिये काम्नी का चित्रण एक बस्ती के रूप में कर रहा हूँ लेकिन इसके बावजूद मुझे तब बड़ा अजीब लगा जब मैं एक ऐसे दरवाजे के पास पहुँचा जिसके ऊपर लिखा था 'बस्ती सोवियत'। तो यानी कि यहाँ समुद्र में भी म्युनिसिपल व्यवस्था का बोलबाला था !

अब मैं अपनी नोटबुक से कुछ उद्धरण प्रस्तुत कर रहा हूँ।

इस बस्ती की आबादी छह हजार से ज्यादा है। यहाँ की आबादी में लगभग तीस जातीयताओं के लोग हैं। निस्सन्देह आबादी शब्द से मेरा इसका परम्परागत तात्पर्य नहीं—यह लोग यहाँ समुद्र में तो रहते ही हैं, बाकू में भी रहते हैं जहाँ प्रत्येक का अपना फ्लैट या कमरा है।

नेफ्त्यानिये काम्नी में एक तेल तकनीकी विद्यालय है। यहाँ मजदूर अपनी पढ़ाई जारी रख सकते हैं। संस्कृति प्रासाद की अपनी शौकिया कला मण्डली है। शौकिया कलाकारों के कंसर्टों में चार चाँद लगाने बाकू से कलाकार प्रायः आते रहते हैं और सोवियत संघ के जन कलाकार रशीद बेइबुतोव, अजरबैजान की जन कलाकार शौकेत अलेकपेरोवा सहित बहुत से दूसरे कलाकार यहाँ अक्सर मेहमान बनते हैं।

कुछ ही मिनटों बाद बाकू के लिए रवाना होने वाली नौका पर सवार होने से पहले नेफ्त्यानिये काम्पनी के हम अतिथिगण और काम के बाद घर लौटते कर्मी छायादार सड़क की बेंचों पर बैठ जाते हैं। चारों ओर सागर ही सागर है। सील मछलियों के गीले पृष्ठ भागों की तरह बहुत-सी काली-काली चट्टानें कभी लहरों में छुप जातीं, कभी फिर दिखाई देने लगतीं। इस जगह का नामकरण इन्हीं काली-काली चट्टानों के कारण नेफ्त्यानिये काम्नी—काली चट्टानें किया गया। पहले यहाँ सबसे बहादुर मछुवारे भी अपनी कमजोर, हल्की नावों में आने से भय खाते थे। चट्टानें फिसलन भरी और तेलही थीं—लेकिन तब किसी को गुमान तक नहीं था कि तेल के कारण वे ऐसी थीं। उन पर चढ़ना असम्भव था लेकिन मामूली-सी आँधी में भी जहाज का उनसे टकराकर ध्वस्त हो जाना आसान था। कभी-कभी इन काली चट्टानों

के आस-पास जलती गैस के कारण नीली-नीली रोशनियाँ टिमटिमा उठती थीं और इस 'शैतानी' आग के डर से लोग दूर ही रहते थे।

एक बार फिर हमें बड़ी अतिथि-परायणता के साथ 'बाबाजादे' ने डेक पर आने को आमन्त्रित किया। समुद्र में हमें एक और आश्चर्यजनक दृश्य से दो-चार होना पड़ा—हमें पानी में तैरता ड्रिलिंग रिग दिखाई दिया। ऐसे रिग सोवियत संघ में तेल की खोज पहली बार कर रहे हैं और आपके लिए यह बताना बड़ा कठिन होगा कि इन पर काम करने वाले लोगों को तेलकर्मी या नाविक कहा जाए।

कुछ ही समय पहले मैंने समाचारपत्र 'बाकू' में पढ़ा था कि एक पूरा का पूरा तैरता ढाँचा निर्माणाधीन है। इसकी डिजाइन ऐसी बनाई गई है कि यह काफी गहरे पानी के अन्दर 6,000 मीटर तक कुओं की ड्रिलिंग कर सकता है। इस अधिष्ठापन का विस्थापन 9,000 टन होगा, इसका प्लेटफॉर्म 60 मीटर लम्बा और 45 मीटर चौड़ा होगा तथा इसकी कुल ऊँचाई 7,5 मीटर होगी। यह दुनिया का सबसे बड़ा तैरता हुआ ड्रिलिंग रिंग होगा। इस विशाल अधिष्ठापन में वास्तव में एक स्वचालित संयंत्र होगा। मजदूरों के रहने के लिए न केवल सुसज्जित केबिन होंगे बल्कि एक हॉल भी होगा जिसका इस्तेमाल सिनेमा दिखाने के लिए या क्लब के रूप में या तो आराम करने के लिए किया जाएगा। नये तैरते रिग को सबसे पहले नेफ्त्यानिये काम्नी के पास—पड़ोस में काम में लगाया जाएगा जहाँ वह कठिन जगहों पर प्रायोगिक ड्रिलिंग करेगा। फिर यह समुद्र में और आगे जाकर लंगर डालेगा और इसके साथ ही मर्मर ध्वनि करते पेड़ और खिलते फूलों वाली विशाल वीथिका भी समुद्र में आगे बढ़ती जाएगी।

बाकू को 'तेल अकादमी' के नाम से अभिहित करना एकदम सही है। यह मात्र संयोग नहीं कि बाकू के तेलकर्मी देश के विभिन्न हिस्सों में देखे जाते हैं जहाँ वे नये-नये तेल भण्डारों को विकसित करने में मदद देते हैं। मैंने खुद उन्हें पूर्वी साइबेरिया में देखा था जहाँ हमारे देश के यह दक्षिणवासी अभूतपूर्व पालों और जमी धरती से भयभीत हुए बिना काम करते हैं। मैं जानता हूँ कि एक बार बाकू के तेलकर्मियों को फौरी तौर पर पड़ोसी तुर्कमानिया से तेल कूप में लगी आग बुझाने के लिए बुलाया गया था।

अजरबैजान में तेल उत्पादन अनवरत गति से बढ़ रहा है और इस तेल

उत्पादन का आधा से अधिक हिस्सा कैस्पियन सागर से मिलता है। कैस्पियन सागर रूपी भूगर्भीय खजाने से नेफ्त्यानिये काम्नी के बहादुर कर्मी काला सोना निकालते हैं।

लेकिन आप यह न सोचिए कि समुद्र से तेल निकालना बड़ा महंगा है। हालांकि इन ढाँचों के निर्माण और उपयोग में काफी बड़े विनियोग की जरूरत पड़ती है, समुद्र से निकाले जाने वाले तेल पर बाकू में समुद्र तट से तेलनिकासी की अपेक्षा लगभग एक-तिहाई खर्च ही पड़ता है। सबसे पहली बात तो यह है कि समुद्र के गर्भ में छुपी यह सम्पदा अतुल है। यहाँ निकलने वाले तेल को पम्प नहीं करना पड़ता है—आमतौर से तेल किसी फव्वारे के रूप में फूट निकलता है।

हमारी नाव बाकू पहुँच रही है। तट पर के पुराने बीबी-एइबात तेल क्षेत्र दिखाई देने लगते हैं। वहीं सौ साल से ज्यादा समय पहले अजरबैजान के पहले तेल डेरिक खड़े किए गए थे। यही वह तेल क्षेत्र है जिसके बारे में मैक्सिम गोर्की ने अपनी यात्रा के बाद बिलकुल सही लेकिन करुण शब्दों में कहा था—''अनगिनत खजानों के मुँह पर बसी यह आबादी जीवन व प्रकृति की दरिद्रता में अनुपम है।''

किसी जमाने में हमारा बाकू ऐसा ही था। अब हमारी नौका शानदार सागर-तट पर पहुँच गई थी जहाँ पेड़ मर्मर ध्वनि करते झकोले खा रहे थे और शाम की रोशनियों की हजारहा टिमटिमाहटों ने हमारा अभिनन्दन किया। झुटपुटाते आकाश की पृष्ठभूमि में सोवियत सत्ता काल में खड़े किए गए नये-नये खूबसूरत मकान सीना ताने हैं। सोवियत सत्ता काल में ही लोग अपनी राष्ट्रीय सम्पदा के स्वामी बने और यह सम्पदा लोगों के सुख-कल्याण तथा खुशहाली के लिए काम में लाई गई।

द्वीप

पहली किलकारी। नवजात शिशु की किलकारी से सभी परिचित हैं। मेरी भी, आपकी भी।

पहले आँसू। उन्हें कौन याद करता है, उन आँसुओं को ?\वे सहज प्रवाहित होते हैं।

पहली हँसी–हम इसे भी भूल जाते हैं। यही सब मेरे प्रागैतिहासिक युग का निर्माण करते हैं।

याद के द्वीप...अपने बारे में कुछ आरम्भिक बातें मैं जबरन भुला देता हूँ क्योंकि ऐसी बातें नहीं होतीं। कोई मुझ पर विश्वास नहीं करेगा, खुद मैं

भी अपने आप पर विश्वास नहीं करता। यह प्रकृति के विरुद्ध और अवैज्ञानिक है।

लेकिन इसके बावजूद मैं बताए बिना नहीं रहूँगा क्योंकि यह मुझे आज भी साफ-साफ याद है।

एक पुराने अंजीर के पेड़ के नीचे मेरे माता-पिता एक नमदे पर लेटे हैं। बाँस के पालने में बगल में एक बच्चा सोया है। जब मेरी माँ की नींद खुली, उसने मुझे बालू पर देखा। मैं बालू खा रहा था। मैं बालू खाए जा रहा हूँ, बालू ताजा है, भुरभुरी है हालांकि मेरे दाँत नहीं–दाँत उगने से पहले आदमी को रेंगने का पूरा ऐतिहासिक चरण तय करना पड़ता है।

लेकिन पहली बात आखिर थी क्या ? शायद कुछ और।

मैं पाँच साल का था या लगभग पाँच साल का–पिताजी मेरे लिए गाँव से एक मेमना खरीद लाए थे; हमारा अगुवा और अनथक सरगना मेरा चचेरा भाई अनवर–बेचारा असमय ही यह अमर्त्य संसार छोड़ गया–मुझे साथ लेकर बड़े से, थोड़े ढलवे चरागाह के लोहे के घेरे में घुस गया।

उस चरागाह के केन्द्र में सोने वाले गुम्बददार अलेक्सान्दर नेव्स्की के गिरजाघर की इमारत है। अनवर गोल-गोल ईमानदार आँखों वाले मेमने को अन्दर घसीट ले जाने में मेरी मदद करता है। धूल भरे बाकू में गिरजाघर के पास का चरागाह हरीतिमा का द्वीप है। एक लम्बे रस्से से मैं मेमने को घेरे की छड़ियों से बाँध देता हूँ और मैं व अनवर, दोनों शीतल, लम्बी-लम्बी, हरी घास में लेट जाते हैं।

...या शायद यह।

एक काली तश्तरी घूम रही है। मुझे लगता है जैसे बक्से में बैठकर संगीतकार स्वर-लहरियाँ बाहर भेज रहे हैं। मैं एक स्टूल पर बैठा हूँ, मेरे पैर स्टूल के पाँवों में लगी आड़ी लकड़ी तक भी नहीं पहुँचते हैं। मैं मजदूरों व किसानों के मिलिशिया स्टेशन नं. 3 में हूँ। यह एक मंजिली मिट्टी की बनी इमारत है और इसकी खिड़कियों में छड़ें लगी हैं। यहाँ सिर्फ पुरुष ही पुरुष हैं। ग्रामोफोन पर एक रिकार्ड घूम रहा है–लेजगिन्का ! लम्बे कद के बड़े-बड़े पुरुष नाच रहे हैं। वे मेज से परे छोटी-सी जगह में नाच रहे हैं। भूरी लचीली पेटियाँ तथा कारतूसों की कमर में लगी पट्टियाँ चरमरा रही हैं। बिरजिस फूलकर ऊपर उठ रहे हैं। पालिश लगे बूट इस तरह दमकते हैं

मानो उन पर वार्निश हो। पिताजी को नाचना अच्छा लगता है और दूसरे सिपाहियों में भी कम उत्साह नहीं। वे पंजों पर खड़े होकर सचमुच के नर्तकों की तरह नाचते हैं। सब नाच रहे हैं, सिर्फ मैं देख रहा हूँ। उनके चेहरों पर मुस्कान खेल रही है। मैं भी खुश हूँ, उनका वयस्क लोगों का नाच देखकर मैं भी रोमांचित हूँ। सुदूर अतीत के उस दिन क्या हुआ था ? ऐसे सवाल मुझे अब परेशान करते हैं लेकिन तब वयस्क लोग नाच रहे थे ! वयस्क ? वे बीस या पच्चीस साल के पुरुष थे। इस समय मेरी जो आयु है, उससे भी कम के वे थे, महज नौजवान। लेकिन मेरे लिए वे आज भी बड़े हैं।

...याद में बसी पहली खुशी...

मैं पिरशागी के बंगले में हूँ। इमारत के पीछे दीवार से लगी बालू की एक टेकरी-सी खड़ी है। अप्शेरोन पर अक्सर बहने वाली उत्तरी हवा से यह टेकरी जमा हुई है। हम मकान की किर से ढकी चपटी छत से टेकरी पर कूदकर मुलायम बालू में धँस जाते हैं और हमारे नंगे पाँवों के नीचे से रेत की छोटी-छोटी धाराएँ बहने लगतीं।

हालांकि किसी ने कुछ नहीं बताया था, मुझे अचानक ऐसा लगा कि माँ आई है। मैं गाँव की धूल भरी सड़क पर दौड़ पड़ा। उससे सबसे पहले मिलने के लिए मैं जितनी तेजी से दौड़ सकता था, दौड़ रहा था। वह सैनेटोरियम से वापस लौट रही थी। किसी स्वास्थ्य केन्द्र में वह यही पहली और आखिरी दफा जा पाई। सड़क पर उड़ती चाल से दौड़े हुए मुझे माँ का चेहरा दिखाई देने लगा था—वह इस बात से खुश होकर मुस्करा उठी थी कि मैंने उसे देख लिया था।

वह रही ! मैं उसकी बाँहों में उछलकर घुस गया, अपने गन्दे, धूल भरे पैरों व हाथों से मैंने उसे चारों ओर से जकड़ लिया, मेरी नंगी एड़ियाँ उसकी पीठ से सटी थीं। मुझे उठाकर वह ले चली। आह, कितनी प्यारी थी वह, मेरी माँ !

मैं बंगले में अकेला रह गया हूँ लेकिन मेरी मौसी मुझे शहर भेजने का फैसला करती है। भारी-भरकम लेकिन चुस्त व तेज-तर्रार मेरी मौसी मुझे एक ड्राइवर को सौंप देती है जो शहर के बाजार में जा रहा है। हमारा छकड़ा धूल भरी सड़क पर लम्बे समय तक हचकोले खाता रहा; शाम हो जाती है लेकिन लगता है, हम कभी पहुँच ही नहीं पाएँगे। सौहार्दपूर्वक,

देर तक सीटी बजाती उपनगरीय ट्रेनें हमारे पास से धड़धड़ाती गुजर जाती हैं; पास में और दूर में अनगिनत डेरिक हैं; हवा में तेल की गन्ध बसी है—यह ऐसी गन्ध है जो मुझसे बचपन से लेकर आज तक अभिन्न है क्योंकि इसी से होकर मेरे रास्ते गुजरते हैं, इसी में वह नगर है जहाँ मैं पैदा हुआ, इसी में समुद्र है और मेरे देश से सम्बन्धित हर चीज इससे जुड़ी है।

यह रही आखिरी टेकरी; गोलश्म पत्थरों वाली सड़क यहाँ से शुरू होती है। छकड़े की एक दरार से मैं बड़े-बड़े, उभरे, चिकने गोलाश्म पत्थरों को देखता हूँ। मैं गहरे नीलारुण रंग वाले दमकते बैंगन के पौधों से भरी टोकरी के ऊपर झुककर शहर देखने लगता हूँ।

छकड़ा संकरी सड़कों पर खड़खड़ाता, चपटी छतों वाले मकानों के पास से गुजरता आगे बढ़ता रहा। एकाएक वह हमारी गली के सामने रुक जाता है। "क्या तुम अपना मकान ढूँढ़ सकते हो ?" दाढ़ियों से ढके चेहरे वाले गाड़ीवान ने पूछा। भला मैं अपना मकान कैसे नहीं ढूँढ़ सकता था ! बस वह रहा।

मैं छकड़े से नीचे कूद पड़ा और नमस्ते या धन्यवाद कहे बिना फाटकों की ओर दौड़ पड़ा—मैं तब जानता ही नहीं था कि उस आदमी को धन्यवाद कहना चाहिए। मैं गाँव का मकान, ड्राइवर, सब भूल चुका था और घर की ओर दौड़ रहा था जहाँ मुझे लगता है, मैं चिरन्तर काल से नहीं गया हूँ। निस्सन्देह, तब मुझे यह भी पता नहीं था कि चिरन्तन क्या होता है और आज भी नहीं पता...

वे रहे फाटक !

मैं पल भर को रुक जाता हूँ। दूसरी मंजिल के हमारे दोनों कमरों में और पूरी की पूरी गैलरी में तेज, चौंधियाती बिजली की रोशनी फैली है।

सब जिन्दा है, दोनों—माँ भी, पिताजी भी। वे जवान हैं। उनके चेहरों पर कितनी खुशी है ! उस तेज रोशनी को शीघ्र ही बुझा देने वाले युद्ध का उन्हें तनिक भी पूर्वाभास नहीं। उन्हें इसका भी अहसास नहीं था कि उनके जीवन के दिन बड़े गिने-चुने थे—पिताजी के लिए एक साल से कुछ ज्यादा और माँ के लिए छह साल।

...याद में बसा पहला शोक...

बाकू के गर्म अगस्त के एक दिन को एक क्रन्दन विदीर्ण कर जाता है। गैलरी के सारे दरवाजे, सारी खिड़कियाँ खोल दी गई हैं जिससे कि असीम रूप से बादलहीन आकाश को हम पर दया आ जाए और वह हमें हल्की-सी बयार का कोई झोंका ही भेज दे।

यह क्रन्दन हमारी पड़ोसन का था जो गैलरी के एकदम आखिर में रहती थी और एकमात्र टेलीफोन की स्वामिनी थी।

वह क्रन्दन मेरे लिए था। मैं पूरी तरह काँप उठा। जन्म से लंगड़ी वह पड़ोसन जो आज आठ-आठ वयस्क बेटों की माँ है, मेरी ओर लंगड़ाती बढ़ आई। उसके सफेद होंठों पर मैंने पढ़ लिया–''वह मर गई !''

मेरी माँ की जीवन-यात्रा समाप्त हो चुकी थी। आज मैं जितनी उम्र का हूँ, वह उस समय इससे ज्यादा जवान थी यानी उस उम्र में थी जब जीवन अभी शुरू ही होता है, ऐसा प्रतीत होता कि अभी तो सब कुछ भविष्य के गर्त में ही है।

...मेरी पहली कायरता। ओह, मुझे आज भी पूरी तरह याद है !

मेरी मौसी जिसकी आँखें रोते-रोते सूज गई थीं और आवाज कुछ-कुछ अजीब व गहरी हो गई थी, मुझसे बोली–''सीधे अस्पताल चले आओ ! तुम्हारी माँ तुम्हें देखना चाहती है।''

मैं जानता था, माँ को वार्ड से हटाकर हॉल के एक पार्टीशनदार केबिन में ले जाया गया था जिससे कि दूसरे मरीज उसे मरते न देख सकें।

मौसी ने कहा–''वह मर रही है, वह तुमसे विदा लेना चाहती है।''

लेकिन मैं नहीं गया। मैं भयभीत था।

मैं मरते हुए आदमी को देखने से भयभीत था।

मैं नहीं जाऊँगा !

मैं पत्थर की तरह अपनी जगह अड़ा खामोश था।

मुझे वह अपने पंजों में जकड़ लेने वाली दिख रही थी। वह मौत जो मेरी माँ के आस-पास चक्कर लगा रही थी।

कहीं वह मुझे दबोच ले तो (कौन मुझे दबोच लेगी ? मौत ? मेरी माँ ? भय के कारण दोनों ही मेरे लिए एक हो गई थीं) और आदेश दे–''तू भी आ जा !''

लेकिन मैं यह नहीं चाहता !

मैं भयभीत हूँ।

विमूढ़कारी, ऐन्द्रिक भय।

संज्ञाहीनता।

...मेरी पहली चिन्ताएँ...वे एक साल तक रहीं, मेरी पहली चिन्ताएँ।

काम से घर लौटते समय हमारी सड़क की सीधी चढ़ाई चढ़ना भी माँ के लिए मुश्किल हो गया था। अंधेरा घिर आया था। युद्ध के कारण बत्तियाँ गुल थीं। सड़क पर कोई हमला कर सकता था या तो अपमानित कर सकता था। लेकिन मुख्य बात थी उसके दिल की बीमारी। माँ की बगल में चलते समय मैंने उसके दिल की धड़कनें सुनी थीं और उसकी स्थिति भी भाँप ली थी–मुझे लग रहा था कि दिल पूरे सीने में फैलकर बड़ा हो गया था, भरपूर जगह व हवा के लिए लालायित, थका-हारा।

माँ प्रसूतिगृह से बाहर आती थी जहाँ वह काम करती थी। वह मुझे दरवाजे पर ही मिल जाती थी। फौरन ही झुककर वह मेरा हाथ थाम लेती और हम प्रसूतिगृह की दोमंजिली इमारत के उद्यानों के सामने से धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगते। और संकरे बेसिन मार्ग पर स्थित ट्राम स्टॉप तक हमें आयोडिन की गन्ध मिलती रहती।

ट्राम से हम बस दो ही स्टॉप जा सकते थे। हम शोरगुल, भीड़-भाड़ और धूल भरे बाजारनी मार्ग पर ट्राम से उतरते और काफी देर तक, माँ के लिए तो वे दुखदायी लम्बे क्षण होते थे, ऊपर को चढ़ती सड़क पर चलते रहते। उसे तब स्ताराया पोच्तोवाया मार्ग कहा जाता था। हम अंधेरी खिड़कियों वाले एकमंजिले मकान के पास से, लगभग दीवारों से सटते हुए आगे बढ़ते रहते क्योंकि पैदल मार्ग बड़ा ही संकरा था। बहुत खुश होते हुए हम कसुम–इजमाइलोव मार्ग को पार करते और एक बड़े-से, पुराने फैशन के मकान के सामने रुक जाते। अपने नीले पड़े होंठों से माँ कुछ कहना चाहती थी लेकिन कह न सकती, साँस लेने में असुविधा के कारण वह खड़ी हो जाती–सिर लटकाये, पत्थर की दीवार को थामे। मैं उससे हटकर एक ओर खड़ा हो जाता जिससे कि हवा उस तक आराम से पहुँच सके, जिससे कि उसके बीमार दिल को अपनी उपस्थिति से बोझिल न करूँ। हम लगभग अपनी मंजिल पर पहुँच जाते थे। आखिरी चरण सिर्फ एक ब्लाक तय करना बाकी रह जाता था। वह अपना सिर ऊपर उठाती

और मैं भाँप लेता कि वह खुद से कह रही थी कि बाकी रास्ता तय करने के लिए उसमें काफी दम-खम है, वह अपने दिल को सान्त्वना दे रही थी, उसे उस वक्त की याद दिला रही थी जब वह उसके काबू में था और यह मामूली-सी चढ़ाई पूरी करना उसके लिए बड़ा आसान था, इसमें दिल को कोई ताकत लगाने की जरूरत भी न थी।

एक बार फिर हम धीरे-धीरे आगे बढ़ चलते और मैं जानबूझकर छोटे-छोटे डग भरता था; उस एक साल में मैंने धीमे से धीमे चलने की कला में पूरी महारत हासिल कर ली थी। अच्छा हो कि माँ सोचे, मैं नहीं, वह खुद जल्दी कर रही है।

●●●